

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180123

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1/856K Accession No. G.H. 2154

Author अरुण उमाशंकर

Title कागज की नाव 11956

This book should be returned on or before the date last marked below.

कागज की नाव

उमाशंकर शुक्ल, एम० ए०

प्रकाशक

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लिमिटेड,

इलाहाबाद

१९५६

मूल्य १।।।)

प्रकाशक :

बी० एन० माथुर

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड,

इलाहाबाद

मुद्रक :

नरेन्द्रनाथ घोष,

रिपब्लिकन प्रेस, प्रयाग

राज को—

जो मेरी जिन्दगी के
सभी संघर्षों की साम्तीदार है ।

भूमिका

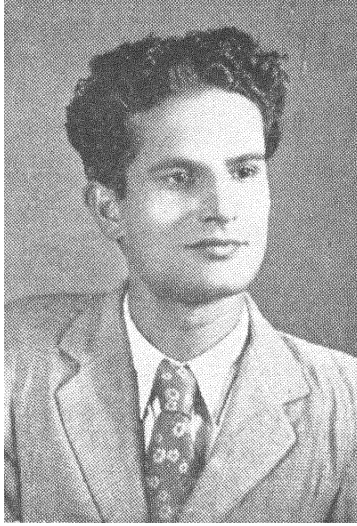
श्री उमाशंकर शुक्ल की 'कागज की नाव' पढ़ डाली। भाषा बड़ी फड़कती हुई है और कितनी ही जगहों लेखक विचारों की गहराई में पैठ गया है। आशा है, प्रौढ़ता पाकर वह अपनी विचार धारा को और भी गहराई तथा विस्तार में ले जायगा। भाषा को विषय के अनुकूल बनाने में लेखक की क्षमता सराहनीय है। विवरण तथा विश्लेषण पुस्तक में अच्छा देखने में आता है और दिखता है भावों का सुन्दर चित्रण भी। लेखक की बोलचाल की किन्तु चुभती भाषा मुझे बेहद पसन्द आई।

'कागज की नाव' की उपयुक्त भाषा और कथानक तथा चित्रण को देखकर तो मन यही कहता है कि यह इसके लेखक का अपना क्षेत्र है। पुस्तक को देखने से स्पष्ट है कि लेखनी बहुत शक्तिशाली है और हिन्दी साहित्य को उससे बहुत आशाएँ हैं।

मैं "कागज की नाव" की लोकप्रियता और इसके लेखक की सतन् साहित्य-साधना की कामना करता हूँ।

हैपीवेली, मसूरी }
४ सितम्बर ५६ }

राहुल सांकृत्यायन



लेखक

अपनी ओर से—

‘मीठी कसक’ के बाद ‘कागज की नाव’ आपके हाथों में देते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। मेरा कहानीकार आगे बढ़ा है कि नहीं—इसकी मीमांसा करना मेरा उद्देश्य नहीं है, यह तय करना आपका काम है। फिर भी ये कहानियाँ मेरी बात कह देंगी और आपसे भी कुछ कहलवा लेंगी।

दिन पर दिन और साल पर साल की परतें पड़ती जाती हैं और जिंदगी अपने कड़वे-मीठे अनुभवों की लकीर मेरे मानस के किसी स्थान में सुरक्षित कर देती है। दिमागी केमरे में तीन-चार साल के भीतर, अपने पास-पड़ोस, घर-बाहर से देख-सुन, सोच-समझकर जो कुछ भी सँजोए रखा था, उसी का ताना बाना बुनकर आपके सामने—वही आप जिनसे लेखक का बहुत निकट का सम्बन्ध होता है, प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरी कहानियों के चरित्र जीते-जागते, चलते-फिरते लोग-बाग हैं, जिनको हम रोजमर्रा की जिंदगी में देखते-सुनते, बोलते-चालते हैं। यदि मैं कहूँ कि ये कहानियाँ मेरे अनुभव की चरम सिद्धि हैं तो अनुचित न होगा।

पंडित जी (नन्ददुलारेजी वाजपेयी) का मार्गदर्शन तो हमेशा साथ रहता है। उनके बारे में क्या लिखूँ, उनको तो मैंने सदैव पितातुल्य समझा और वैसा ही मुझे उनका स्नेह मिला है। आदरणीय राहुलजी, और वृन्दावनलालजी वर्मा के प्रोत्साहन ने भी मुझे आगे लिखने-पढ़ने को प्रेरित किया है। उनसे इतना ऐसा स्नेहभाव पाने का तो मैं सदैव अधिकारी हूँ।

(२)

अपने पाठकों के सम्बन्ध में क्या कहूँ—उनसे मुझे 'मीठी कसक' कथा-संग्रह में जो स्नेह मिला वही 'कागज की नाव' की प्रेरणा का स्रोत है ।

इस मौके पर, मुझे अपने मित्र श्री बी. यन्. माथुरजी का शुक्रिया अदा करना होगा जिनकी दिलचस्पी के सबब से ही यह पुस्तक जल्दी और इतने अच्छे रूप में निकल सकी है और अपने करीब के सुहृद् कलाकार श्रीजोगलेकर के सहयोग का उल्लेख किये बिना भी मैं नहीं रह सकता जिनकी तूलिका ने 'कागज की नाव' की मुख पृष्ठाकृति को जन्म दिया ।

धरमपेठ, नागपुर }
६ दिसम्बर, १९५५ }

उमाशंकर शुक्ल

अनुक्रमणिका

१	खोटा रुपया	...	...	१
२	तीन तसवीरें	...	...	६
३	पबलक का चक्कर	...	...	६
४	जो सपना था सो अपना है	...	...	१४
५	मिनिस्टर की दिवाली	...	...	२१
६	और पंडित तिवारी हार गये	...	...	३०
७	गुलाबो	...	...	४०
८	सौ का नोट	...	...	४६
९	अब आप ही बतलाइये मैं क्या करूँ	...	...	५२
१०	क्या यही जिन्दगी है	...	...	६१
११	विमल	...	...	६७
१२	खुदकुशी	...	...	८१
१३	बाई बाई डार्लिंग	...	...	९०
१४	हिंडोले के आठ चक्कर	...	...	९७
१५	हैवानियत बनाम पैसा	...	...	१०५
१६	और मेरी नौकरी छूट गई	...	...	११०
१७	सिगनल्स डायरी	...	...	११६
१८	आज की कसौटी	...	...	१२६
१९	कागज की नाव	...	...	१३२

खोटा रुपया

हाँ, मैं रिक्शा चलाता हूँ। मैं, पं० उमाशंकर शुक्ल, एम० ए०
बल्द स्वर्गीय पं० गिरिधारीलाल शुक्ल सकूनत नरयावली जिला
सागर; आजकल रहने का ठिकाना मदनमहल जबलपुर में; रिक्शा
चलाता हूँ। रिक्शा ही तो चलाता हूँ और क्या ? चोरी तो नहीं
करता हूँ, धोखा तो नहीं देता हूँ, किसी का दिल तो नहीं दुखाता
हूँ। रिक्शा चलाता हूँ, मजदूरी करता हूँ और पेट पालता हूँ,
अपना ही नहीं बल्कि अपने अलावा तीन और आश्रित अंधे-नूले
मानवों का। रिक्शा चलाता हूँ, क्योंकि हम सबको ठीक से दो
बार रूखी-सूखी रोटी देने वाली नौकरी भी तो नहीं मिलती। अभी
जाकर कितनी कोशिशों के बाद फेक्टरी में ७३ माहवार की नौकरी
मिली है—अपने एक क्लर्क मित्र की मदद से। जबलपुर में मँहगाई में
तो दिल्ली को भी मात करता है इससे यह बस नहीं होती मुझे,
मेरी बूढ़ी-लँगड़ी माँ को, अंधी विधवा बहिन और उसकी सात-
आठ साल की लड़की को। तभी मेरे दोस्त, मैं रिक्शा चलाता
हूँ। आप कहते होंगे, बड़ा निकम्मा है ऐसा नीच काम करता है।
मैं कहूँगा—नहीं मेरे यार, तुम गलती पर हो। रिक्शा चलाना नीच
कार्य नहीं है। यह मजदूरी है—श्रम-ईमानदारी की कमाई, कर्तव्य-
फर्ज की अदाई, इससे मुँह मोड़ूँ तो नीच हूँ। अरे मैं तो साधक हूँ,
तपस्वी वशिष्ठ-विश्वामित्र से भी बढ़कर। तभी खुश हूँ, बहुत खुश
कि दुख में भी कहकहा लगाकर हँसता हूँ। बस प्यार-मोहब्बत
के नगमे गाता हूँ और मस्ती से नौकरी से वापिस आने के बाद
रात को रिक्शा चलाता हूँ। डेढ़ रुपया रोज, आमद में से रिक्शे
के मालिक को किराये का देना पड़ता है, बाकी अपना और अपने

स्वर्गीय पिता पं० गिरिधारीलाल शुक्ल का। अपने राम को किसी से कोई शिकावा या गिला नहीं है, सिर्फ कभी-कभी जाने क्यों कुछ ऐसा-वैसा, अटपटा सा लगता है जब अपने छोटे से चटाई और टीन के बने आशियाने के सामने की अट्टालिका में रहनेवाले मिडिल फेल लाला टेनूराम को रॉल्स-रायल्स में बैठा देखता हूँ। पर फिर सोचता हूँ, यह तो तकदीर का खेल है—पौरुष का जहूड़ा-अपना अपना भाग्य। अपने को इससे क्या? तभी चुप हो जाता हूँ और किसी तरह अपनी ऊबड़-खाबड़ जिन्दगी को आगे बढ़ाता हूँ। सोचता हूँ—यदि सब मोटर पर चलने लगे तो पैदल कौन चलेगा? यह तो इस दुनिया का नियम है कि एक मोटर पर चढ़कर आराम पायेगा तो दूसरा उसी से दबकर मौत पायेगा। एक अधिक खाना खाकर बीमार होगा तो दूसरा भूखों ही मरेगा। इसमें क्या कौन सुधार करेगा और क्या हो भी सकता है?

हाँ, तो मदनमहल की पहाड़ियों के पास मेरा छोटा सा मकान है। जबलपुर में किराये का अच्छा सा मकान समय पर मिल जाना असंभव नहीं तो मुश्किल बात तो है ही। फिर मेरी हैसियत के आदमियों का ऐसी परिस्थिति में कहाँ ठिकाना? तभी मुझे शहर के बाहर कितनी दूर मकान मिल सका है। पर शुक्र है खुदा का, मिल तो गया। मकान सन १९५२ के बाद का बना हुआ है इसलिए मेरा मकान-मालिक निडरतापूर्वक २५) माहवार मुझसे इस सड़े-गले मकान का लेता है। पर अपने राम को उससे भी कोई शिकायत नहीं। सोचता हूँ—दुनिया कुछ ऐसी ही है। यहाँ सब ऐसे ही तो हैं। फिर भला हमारे मकान-मालिक महोदय अच्छे क्यों हों? उन्हें भी पल्ले दुर्जे का धूर्त, बेईमान, धोखेबाज और नीच होना चाहिए, सो वे हैं।

दूर बहुत दूर मदनमहल की तलहटी में एक टीले पर बने मेरे टीन और चटाई के छोटे से मकान के सामने एक छोटा सा

बरसाती तालाब है जिममें सैकड़ों-हजारों कमल के फूल लगे हैं। हवा चलने पर ऐसा कुछ लगता है, जैसे कमल के उन फूलों और पत्तों पर प्रकृति थिरकती है। आस-पास पड़े हुए गोल-मटोल, काले-काले पत्थर, लगता है—कुदरत ने हथौड़ा-निहाई से काट-छाँट कर और उन्हें इतना ऐसा खूबसूरत बना कर एक कतार में वहाँ जमा कर रख दिया है। और तब एक बारगी राह चलनेवालों का, मेरा नहीं, मन इस ओर देखने को मजबूर हो जाता है। इसी तालाब के मेरे घर की ओर वाले छोर के पास एक गुप्तकालीन भगवान बुद्ध का मंदिर है जहाँ उस समय के कलाकारों ने अपनी भावनाओं और कल्पनाओं को पत्थरों के दिल चीर कर बिखेरा है। मंदिर के पास रहने का यह मतलब नहीं है कि मैं कोई पुजारी हूँ या पूजा-पाठ करता हूँ। नहीं, मैं पूजा नहीं करता। यहाँ तक कि जो पूजा-पाठ करते हैं उनसे मुझे नफरत है। क्योंकि वे अपना फर्ज अदा नहीं करते, सिर्फ पूजा करते हैं और अपना समय गँवाते हैं, इसलिए मुझे बुरे लगते हैं। फिर एक तरफ हम गद्दे-तकियों पर बैठकर दस-पचास आदमियों का पेट काटते हैं और अनगिनती आदमियों को धोखा देते हैं तथा घर आकर मुरलीवाले को खीर-पूड़ी का भोग लगाते हैं—इसका क्या मतलब है? इसका मतलब सिर्फ यह है कि हम पल्ले दर्जे के धूर्त हैं, अपने को तो धोखे में डाले ही हुए हैं और दूसरों को ठगने का सुनहरी और दिलकश जाल फैलाये हुए हैं। ऐसा खूबसूरत और हसीन जाल जिसमें से फँसकर कोई बाहर न निकल सके। इसलिए मेरे भाई, मैं सोचता हूँ—ईमानदारी और मेहनत-मजदूरी की जिन्दगी पूजा-पाठ की जिन्दगी से हजार गुनी बेहतर है। मुझे पूजा-पाठ करनेवालों पर हमेशा से तरस आता रहा है। तभी एक बार क्रोध के आवेश में अपनी बूढ़ी माँ से कह आया था, जिसके लिए मैं जिन्दगी भर शर्मिन्दा रहूँगा—कि मूर्ख कहीं की, ईश्वर की पूजा करती है—

पत्थर की ? क्या पत्थर की पूजा करने से तुम्हें खाना मिलता है ? खाना मैं तुम्हें देता हूँ, मेरी पूजा करो। इन्सान की पूजा करो, इन्सानियत के कदमों को चूमो। पैसे को चंदन, फूल चढ़ाओ, तब तुम्हें खाना मिल सकेगा और तुम जिंदा रह सकोगी, वरना नहीं। फिर तुम्हारा तथाकथित भगवान् भी तो पैसेवालों की पूजा करता है, उन्हीं का दोस्त है, उन्हीं की मदद करता है। अपने राम को कौन कब, क्या कर जाता है ? दिन भर फेक्टरी में अफसर की भली-बुरी सुननी पड़ती है ; शाम को रिक्शे में सिर मारना पड़ता है तब कहीं दो रखी-सूखी नसीब होती हैं। यहाँ कोई भगवान् खाना नहीं दे जाता। अपने मरे बिना कहाँ स्वर्ग है माताराम ? मेरी माँ बिना सोचे-समझे चिढ़ तो गईं और दुखी भी हुईं पर यदि उन्होंने हकीकत को सोचा होता तो मुझे उस दिन हलुआ-पूड़ी ही खिलाई होती। क्योंकि यह लाख टके की बात थी दोस्त !

एक दिन की हत्यारी शाम, जब मैं चाकरी से शाम को लौटा तो अपनी विधवा बहन को जोर से बीमार पाया। हालत देखकर मैं घबरा गया। पर पास में दवा-दारु को एक पैसा भी तो नहीं था। इसलिए रिक्शा लेकर मजदूरी करने गया और दस बजे रात तक की उस दिन की मेरी कमाई थी चाँदी की एक अठन्नी। भटपट घर को लौट तो रहा था पर रास्ते में लाला टेलूराम के लड़के और उसकी कोई नर्स मित्र के रिक्शे पर ले चलने के आग्रह को भी मैं न टाल सका। रिक्शे पर से उतर उन्होंने मेरे हाथ पर एक चाँदी का रुपया रख दिया। मैंने उन्हें अपने पास की अठन्नी वापिस दे दी और तेजी से दवाइयों की दूकान पर पहुँचा। दवा लेकर ज्यों ही उसे रुपया दिया, दूकानदार ने कहा रुपया खोटा है, दूसरा रुपया दीजिए।

‘ऐं रुपया खोटा है ? रुपया.....। खोटा.....रुपया। दूसरा रुपया देता हूँ। दूसरा...रुपया...दूँ ? कहाँ से दूँ ? अच्छा,

अभी लाता हूँ। तभी रिक्शा लेकर मैं घर की ओर भागा। तब तक मेरी बीमार बहन मुझसे खूबसूरत हो चुकी थी। मैंने अपनी बहन की मौत की खबर किसी को नहीं दी। मैं नहीं चाहता था कि इस दुनियावालों के नापाक कंधे मेरी बहन की पाक लाश को लगे। तभी मैंने रिक्शे पर सदैव मुस्कुराती हुई और अपराधी तथा जुल्मी को भी दुआ देती हुई अपनी बहन की लाश को रखा और श्मशान ले गया। रास्ते में कोई आवाज मेरे कानों में पड़ी जिसकी सख्ती और गर्मी से साफ जाहिर था कि किसी पूँजीपति—टेलूराम या उसके लड़के की थी।

“ओ रिक्शेवाले सुनो तो, कहाँ जा रहे हो?”

“लालाजी अभी मुझे फुर्सत नहीं है, मैं इस समय हैवानियत को—खोटे रुपये को जलाने जा रहा हूँ। लौटते मैं आपको ले चलूँगा। अभी माफ करिएगा।”

तब से मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं टेलूराम सेठों को, ऊँचे मकान और ऊँची दूकानवालों को, कारवालों को, रिक्शे पर जरूर बिठाऊँगा पर उनसे मजदूरी कुछ नहीं लूँगा। चाहे भले ही बेकार हो जाऊँ, मिट जाऊँ और मर जाऊँ पर यह मेरा कौल है।

तोन तसवीरें

कल मैंने उसे टेनिस ग्राउण्ड पर बड़े पंढवाले अफसर्गें और स्रुट-टाई वाले सेठों के बालकों की गेंद उठाते पाया । वह था महात्मा गाँधी के रामराज्य का एक नागरिक । कपड़े थे उसके अस्त-व्यस्त और फटे-पुराने, मन था बिलकुल उदाम और चेहरा था जेठ की दोपहरी में झकड़ लगे हुए नई कोपल के छेवले के पत्ते सहश एवं कालिख पुता हुआ सा । गरीबी तथा भुखमरी के तपेदिक में उसका शरीर सूखकर लकड़ी सा हो गया था । रूखे बिरूखे बड़े-बड़े शुष्क बाल हवा से बातें कर रहे थे और उसकी आँखें ! आँखें तो थीं बन्धन में पड़े हुए मृग-शावक जैसी—आँखें जो प्रतिक्षण त्राण पाने के लिए छटपटाहट की दृष्टि से आकाश की ओर बार-बार उठ जाया करती थीं । प्रायः-प्रायः उसके सारे शरीर में दरारें पड़ी थीं और कुछ एक में से खून भी निकल रहा था पर उससे उसकी क्रियाशीलता में कोई फर्क न पड़ रहा था और वह अपने मालिक बाबाओं को खुश करने के लिए तेजी से दौड़ दौड़कर गेंद दे रहा था—चेहरे पर मुस्कराहट लाकर, संभवतः बेबसी में ही और भले ही उसकी मरी जिन्दगी रो रही थी—भीतर ही भीतर । जहाँ मेरी आँखें उसकी तेजी की दौड़ देखती थीं वहाँ कान सुनते थे जोर का अट्टहास तथा उसी के साथ ग्याँसी मानो तबला और मँजीरा एक साथ और मुझे सुन पड़ रहा था, बहुत ही स्पष्ट—वाह कलुआ ...शाबाश बेटा...बहुत खूब...आज तुझे डिलीट में ले चलेंगे 'मेगिनीफिसेन्ट आवसेशन' देखने । हम लोग तो भीतर सिनेमा देखेंगे तू मजे से बाहर ही कार में 'जंकी' को कम्पनी देना.....।

और कलुआ की बिना सोची-समझी, बनावटी प्रसन्नता की हँसी, साथ में खौंसी की खुल-खुल भी.....।

अपने आई० ए० एम० सेठों और सेठ आई० ए० एम० लोगों के लाइलों की सेवा-शुश्रूषा करनेवाला, काला-कलूटा, चार रुपट्टी मासिक वाला जवाहरलाल की समाजवादी व्यवस्था वाले खुशहाल और गणतंत्र भाग्य का बालक.....।

×

×

×

दूसरे दिन ! भयानक अँधेरी रात, आकाश मेघों से आच्छन्न, चपला का रह-रह कर चमकना और गिमगिम वर्षा। शीतल पवन के झकोरे हृदय में सुख-दुख की तरंगें उठा रहे थे। एकाएक किसी एक सेठ अफसर की कार सड़क से गुजरी। बिजली की गेशनी में मैंने देखा एम० पी० जे० २०३३ और सुना घर-र-र-र पों...पों...पों, हटो...बचो...किच्च...अ... अ...। और तभी यह भी देखा कि उसी गरीब बालक की लाश मरने के लिए तड़प रही थी। कार में साहब के लड़के किसी प्रसन्नता या मजाक की बात पर ठहाका मारकर हँस रहे थे। हाँ...हाँ..., मजाक ही तो था और क्या... ? मजाक...कैसा भयंकर मजाक...कैसी बदसूरत और डरावनी प्रसन्नता... ? लड़कियाँ कह रही थीं, डेडी...डेडी, हरी अप, वी आर गेटिंग लेट फार दी पिक्चर...। साहब गुस्से से बड़बड़ा रहा था। इंडियन-फूल डेअिट कहीं का यहीं मरने आया...।

×

×

×

तीसरे दिन फिर अमीरी गरीबी से खेलकर बेचारी गरीबी का मजाक उड़ा रही थी और वहाँ गरीब-अमीर, छोटे-बड़े, ऊँच-नीच तथा नौकर-मालिक की बंद्दिसाब बढ़ू आ रही थी। वहाँ उसी तरह, जैसी पहले दिन थी और वे अमीरों के बबुआ-बिटिया,

बाबा-बेबी तथा गुड्डा-गुड्डी, फिर उसी तरह टेनिस खेल रहे थे । कलुआ की मौत से अनजान, उसकी गैर हाजिरी से बिल्कुल बेखबर एक अन्य मजदूर भारतीय बालक गेंद उठा रहा था । उसी सेवा-भाव से, बंधन में मुक्ति को खोजता हुआ, त्याग और बलिदान की भावना से अपने को खोकर मिटाकर भी, कुछ पाने की आशा से.....।

पबलक का चक्कर

कल ही तो जीजाजी कह रहे थे शिवकुमार, महेश, राजाराम और उमाशंकर, सबको पबलक का चक्कर है। दो बजे रात को घर लौटना, रात भर जागना और दिन भर सोना, समय पर न तो खाना और न कोई काम ही करना (पढ़ाई-लिखाई की बात मैं यहाँ नहीं कर रहा हूँ—क्योंकि इन दिनों पढ़ाई हो सकना तो असंभव ही रहता है), न वालों में तेल ही है और न ठीक से कढ़े हुए हैं—यह पबलक का चक्कर नहीं तो क्या है? जीजाजी का रोज-रोज यह कहना कि राजाराम, शिवकुमार तुम 'जीनियस' हो, तुम्हें आगे भी बहुत कुछ करना है—रज्जू को बिल्कुल नहीं जँचता। वह केप्टन के धुएँ के साथ (पर आजकल गर्दिश के कारण 'चार मीनार' ही) अपने गम को बाहर निकालकर जीजाजी की खिल्ली उड़ाता हुआ कहता है—सब बड़े-बूढ़े ऐसी ही बकवास करते हैं। अपनी जवानी और जोश के दिनों में खुद पबलक के चक्कर में रहे हैं और खूब मजे लूटे होंगे और आज लगे हैं बातें बनाकर हमें चूतिया बनाने, तथा बिजली की चमक के समान खूबसूरत और छोटी सी जिन्दगी के इस थोड़े से सुख से हमें महकूम करने।

पर अपने राम को जीजाजी की यह बात कुछ जँचती सी है। बम्बई की बरसात और औरत की मुहब्बत का क्या भरोसा? औरत की मुहब्बत पानी का एक बुलबुला है जो उठता है और उठने के साथ ही खत्म हो जाता है। जिस समय उफान आया और आप हाजिर हैं तो बस आपका काम बन गया और आपको बेटिकट सफर करने का टिकट मिल गया और नहीं तो बस, चूक

गई बस । रह गये आप तीनबत्ती पर खड़े हाथ मलते और बस आपका हाथ आपके हाथ में ही रह गया तथा यकीन मानिये शताब्दियों तक आपका हाथ आपके हाथ में ही रहेगा, यदि ऐसी ही कुछ स्थिति बनी रही तो...? हमारे हमउम्रों को इस उम्र में मुहब्बत करते देख मुझे उन पर तरस आता है । हिन्दुस्तानियों की औसत उम्र २६ साल है । इसके बाद किसी दिन ही आप खुदा-बन्द करीम के यहाँ तलब किये जा सकते हैं । और किसी दिन भी आपके दोस्त कहे जानेवाले सच्चे दुश्मनों का (मेरा मतलब आजकल के मित्रों और उनकी मित्रता से है) शोक-प्रस्ताव पहुँच सकता है, क्योंकि एक साँस का तो मामला ही है । बस इसके आवागमन में गड़बड़ी हुई कि बड़ी गड़बड़ी मच गई । पर लोग बात मानते ही नहीं और लगे जाते हैं मुहब्बत करने ।

भले आदमियों को बेवकूफ बनाने में आजकल लोगों को कुछ मजा सा आता है और वे उसमें अपनी तारीफ और बहादुरी समझते हैं । रेस्ट्रॉ में बैठकर लोगों को यहाँ-वहाँ की हाँकने में क्या कुछ लगता है ? बस दोपहरी भर बैठना, अनगिनती गिलास मुफ्ती रिफ्रेजीलेटर का ठंडा पानी पीना, छः पैसे की एक कप चाय लेना तो दो आने की पंखे से हवा खा लेना । इसमें हमें तो कुछ नहीं लगता पर होटल के बनिये से पूछिये, उस पर क्या गुजरती है ? इतना ही नहीं—महिला टेलरिंग कालेज से आती-जाती लड़कियों पर फोकट की मुहब्बत भरी बौछारें, प्रिंसिपल महोदया पर आहों के हमले, सदर से आनेवाली उस हसीन भाङ्गू बेचने-वाली लड़की से चुहल और गुलाबों से रोज आने के वायदे लेने में हमें दरअसल में कोई कीमत नहीं देनी पड़ती पर आस-पास वालों को लंबा-चौड़ा एतराज है । लेकिन इसकी परवाह किसने, कब की ? गर्मी की रात में रेस्ट्रॉ के सामने की बेंच पर बैठकर सिनेमा से आने-जाने वाले लोग-बागों को देखकर शिवकुमार के

भयंकर रूप से हँस देने और छींटाकशी कर देने से, हमें भले ही चाय में शरबत का मजा मिल जाता है पर रेस्टॉ के प्रोप्राइटर का तो दिवाला खिसका जा रहा है न ?

अपने गम में गमगीन, हम कहीं से थके-माँदे आकर होटल में बैठे—चाय की अच्छाई से अपनी बुराई को छिपाने, कि बस यारों ने चने के भाड़ पर चढ़ाते हुए कहा—वाह क्या हाथ मारा है यार तुमने भी ! बड़ी तकदीरवाले हो.....बिरलों की ऐसी सिकन्दर तकदीर होती है । बस इन्हें एक कप चाय और एक स्टेट एक्सप्रेस सिगरेट (मुफ्तखोर अपना रोब गार्लब करने और अपनी मुफलिसी तथा फकीरी छिपाने के लिए जरा कीमती सिगरेट ही पीते हैं) हासिल हुई और मेरी पाकिट में दस-न्यारह पैसे कम हुए । चाय पीकर सड़क के इस पार ही उन्होंने अपने दूसरे किसी तथाकथित दोस्त से कहा—कैसा वृद्ध बनाया साले को... । सड़क की दूसरी ओर पहुँच कर मैंने मन में ही कहा—कितना सस्ता भाट मिला । चलो,... को ठुकड़ा डाल दिया है, कभी काम आयेगा । पर मेरे यार, कोई काम के नहीं हैं क्योंकि आदमी हैं न, कुत्ते होते तो शायद कुछ काम आते... ?

जीजाजी की बात मुझे कुछ काम की सी लगती है । सच तो है, कौन ले यह मुहब्बत की बेहिसाब लम्बी-चौड़ी बीमारी मोल, जिसका कोई हिसाब-किताब ही नहीं है और न कोई इलाज ही है । बड़ी महँगी पड़ती है पर फिर भी यार लोग बाज नहीं आते... ? ज्यादा कुछ नहीं, बस यही—नींद खराब होना, जरा ज्यादा पैसे खर्च होना, विद्यार्थी हुए तो परीक्षा में फेल होना, बीमार हो जाना और अकेली निगशा ही हासिल होने पर पेंड पर टँग जाना, जेब में छोटी सी दो पंक्तियों की चिट्ठी के साथ, कि इसमें किसी का कोई कुमूर नहीं है, मैं अपनी मरजी से ही...आदि-आदि..., मुहब्बत की इनामें हैं । लोग आये दिन मजनूँ, हीरो, पागल आदि टाईटिलों

से विभूषित किये जाते हैं पर आदमी हैं न इसलिए किये चले जाते हैं मुहब्बत, किसी से और कभी भी अपनी औकात तथा वक्त को बिना देखे ही। रज्जू कभी-कभी ठीक कहता है भाई साहब, शाहजादी को पाने के लिए शाहजादा बनना पड़ेगा। रानी से मुहब्बत राजा ही कर सकता है—कोई भी ऐरा-गैरा नत्थू खैरा नहीं। डबल लाईन साईकिल पर चढ़नेवाले, मध्यम वर्ग के भ्रम-जीवी, नरयावली-निवासी, नाम-पंडित उमाशंकर शुक्ल एम० ए० रिसर्चस्कालर (बिना नौकरी-चाकरी के) मुहब्बत करने चले हैं महलों में रहनेवाली...से। तोबा...तोबा..., आईने में कभी अपना साँवला सलौना चेहरा भी देखा है कि बस लगे मुहब्बत की सड़क पर दौड़ने...?

इन्हीं सब बातों को देख-सुनकर अपने भ्रम ने तो हथियार डाल दिये हैं, शिकस्त मान ली है और अशोक राजा की तरह कभी लड़ाई न लड़ने का कौल कर लिया है। तभी यदि मेरी सलाह मानो, दोस्ती के नाते ही, तो गाँठ बाँध लो, कभी पबलक के चक्कर में नहीं आओगे। यह बड़ा खराब चक्कर है, इसमें कुछ हासिल नहीं होता। सब कुछ गँवाओगे ही और यदि यही हाल रहा तो लोग अनादिकाल तक आपको मूर्ख समझकर आपका शोषण करते ही जावेंगे। मैं यह नहीं कहता कि आप किसी के चक्कर में मत पड़िए। अजी साहब, जरूर पड़िए और पड़े रहिए वहाँ तक। विश्वास मानो दोस्त, यह बड़ा बढ़िया चक्कर है। इस चक्कर के दायरे में इन्सानियत, शराफत, इज्जत-आबरू और जाने क्या-क्या आ जाता है...? यदि इस चक्कर को समझ गये तो कुछ न होते हुए भी सब कुछ बन गये और कुछ न पाकर भी सब कुछ पा गये। यदि 'इन्हे' फँसा लिया तो आपके सब ऐब छुप जावेंगे। आप जमाने भर के लुच्चे-लफंगे, गँवार और डाकू होकर भी महाजन और भले आदमी पढ़े-लिखे मज्जान गरीफ माने जायेंगे। आपका

सम्मान होगा और आप मानपत्र भी पावेंगे। हिन्दी की लेशमात्र सेवा न करने पर भी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति तथा शिक्षाशास्त्र का ज्ञान शून्य होने पर भी शिक्षा-शास्त्री तथा शिक्षा-मंत्री या ज्यादा नहीं तो डिप्टी मिनिस्टर ही बन सकने की ताकत रखेंगे और फिर आप हिन्दी के बड़े-बड़े उन्नायकों तथा शिक्षा-शास्त्रियों के सर पर से भी बोलने की हिमाकत कर सकेंगे कि देखो मैं गधा होकर भी क्या-क्या हूँ...! इससे आप इन्सानियत, शराफत, शिक्षा, साहित्य, सम्मान और जाने क्या-क्या तथा सब कुछ ही पा सकते हैं। दोस्तो, जानते हो यह चक्कर किसका है? यह चक्कर है 'श्रीमती लक्ष्मीदेवी जी का...' उनके विवाहित होने से घबराइए नहीं और न निराश ही होइए। जरा सा परिश्रम करने से ही वे आपके कब्जे में आ जावेंगी। किसी की न होकर भी वे सबकी हैं तथा सबकी होकर भी वे किसी की नहीं हैं। सुना है—अभी भी उनमें पहले जैसी ही चमक-दमक है तथा पहले की तरह ही वे नाजो-अंदाज वाली और बुत्तेबाज हैं...।

जो सपना था सो अपना है

‘...तो नानी बऊ, आगे से कभी मैं इन लाल भूँडे वालों के भाषण सुनने तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी। देखो न, कल नरेन्द्रदेव जी कैसी बातें कर रहे थे कि हमको अभी आजादी नहीं मिली है, हम अभी भी गुलाम हैं और जब तक हमारे देश से आर्थिक विषमता नहीं हट जाती तब तक हम आजाद नहीं कहे जा सकते हैं...। देखो तो नानी, कितने बड़े होकर कैसी भूठी-भूठी बातें कर रहे थे ? हम तो कितने दिनों पहले आजाद हो चुके हैं, है न नानी सच...? फिर वे क्यों ऐसा कह रहे थे ? तू तो कहती है बड़े-बूढ़े लोग भूठ नहीं बोलते...?’ रात्रि को भोजन करते समय उषा ने अपनी बूढ़ी नानी माँ से कहा।

‘...हाँ री, बड़े-बूढ़े कभी भूठ नहीं बोलते—ठीक है। ठीक से जल्दी-जल्दी खाना खा और सो—अब रात ज्यादा हो रही है। बकवास न कर...।’ उषा के मुँह में भोजन का कौर देते हुए नानी बऊ ने कहा। ‘...नहीं नानी, हमको तो बताओ, फिर वे क्यों ऐसा कह रहे थे ? और हाँ री नानी, यह आर्थिक विषमता क्या चीज है ? अँगरेज तो चले गये अब इसको हटाने की क्या जरूरत है...?’

‘...तू बड़ी जिद्दी हो गई है आजकल। सुनती ही नहीं कुछ। अरी तू क्या समझे, इन बातों को...? बड़ी हो जाओगी, तो सब समझ जाओगी...।’

‘...तो क्या मैं छोटी हूँ ? देखो, कितनी बड़ी हो गई हूँ कि मामी का सलवार-कुर्ता भी पहन लेती हूँ और कैसा अच्छा लगता है वह मुझको। नहीं बऊ, मैं तो समझती हूँ सब कुछ। उस दिन देख जब मामी से तूने कुछ कान में कहा था, मैंने सब

सुनकर समझ लिया था और हाँ जब तेरे पैर में चोट आ गई थी, मैं समझ गई थी न सब कुछ... ? वता न री नानी सब कुछ, नहीं तो मैं रोटी नहीं खाऊँगी... हाँ... ?”

“...अच्छा चल खा इस कौग को, फिर बताती हूँ सब कुछ। हाँ री उषा, नरेन्द्रदेव जी सब कुछ ठीक कह रहे थे, हमारा देश स्वतन्त्र जरूर हो गया है, अँगरेज लोग भी चले गये हैं पर असली आजादी हमको अभी नहीं मिली है। उस माने हम अभी भी गुलाम हैं और वह गुलामी है आर्थिक परतन्त्रता—आर्थिक विषमता की। आर्थिक विषमता का अर्थ है—अपने देश में धनी-गरीब और छोटे-बड़े का होना एक तरफ, ऊँची अटारी में रहने वाले श्रीकृष्ण सेलट तो दूसरी तरफ टूटे मकानों वाले नब्बू, पुन्न और भैयालाल, एक ओर मिलों के मालिक हैं तो दूसरी ओर मिल-मजदूर। जब तक गरीब-अमीर और छोटे-बड़े का यह अंतर नहीं मिट जाता तब तक हम आजाद नहीं कहे जा सकते...”

...“वाह री नानी तू भी क्या अंट-मंट बक रही है आज ! कहीं भाँग तो नहीं खा ली जैसी शिवरात्रि को मामी और मामा ने खाई थी और तब मामी कैसी मजेदार बातें बक रही थी... ? अँगरेज तो चले गये हिन्दुस्तान से हमें आजाद करके, अब गुलामी कैसी ... ?”

“...मेरी लाड़ली बेटी तू कुछ नहीं समझती अभी। अँगरेजों के चले जाने से और न जाने से हमारी सच्ची आजादी—आर्थिक समानता का कोई सम्बन्ध नहीं है, पहले और अब में क्या अन्तर हुआ है ? सिर्फ लेबिल बदल गया है, बोतल तो वही है न ? बिटिया, हमारी भारतमाता; इस माने में अभी भी परतन्त्र है क्योंकि हमारी भारतमाता तो कोटि-कोटि दरिद्र नारायणों की माँ हैं...”

“...तो नानी हम करेंगे आजाद तुम्हारी भारतमाता को

आर्थिक गुलामी से.....। हाँ री नानी, ये भारतमाता तेरी भी अम्मा हैं तो नानी की अम्मा याने मेरी बड़ी नानी कहलाई वो.....?”

“...हाँ तेरी बड़ी नानी हैं। बेटी वह सब की माता, माताओं की माता है। वह हमारी तुम्हारी सबकी माता है। सारे देश के स्त्री-पुरुष, हम तुम, रजनी संध्या-सब उसके बच्चे हैं.....।”

“...माँ, एक के घर में इतने बहुत से आदमी, एक स्त्री के इतने बहुत से बच्चे.....?”

“...हाँ री चुप रह, बक-बक न कर। अब तुम्हें खाने की इच्छा नहीं है तभी बकवास कर रही है। अच्छा सो.....।”

“...नहीं नानी मुझे नहीं सोना अभी, मैं तो तुम्हारी भारत-माता को आजाद करूँगी आज, अभी, ठीक है न नानी.....?”

“...हाँ ठीक है, अभी सो जा, कल करना रानी बेटी यह काम.....।”

“...नहीं नानी, मैं तो अभी आजाद कर लाती हूँ तुम्हारी अम्मा को। यह भी कोई बड़ा काम है जिसके लिए तू इतना अफसोस करती है? हाँ अम्मा, वे गुलाम हैं कहाँ, किसके घर में, वे तो जेल में बंद होंगी और उन्हें हथकड़ी डली होंगी...जैसी उस दिन शंकर सौर को चोरी करने से पहनाई गई थीं.....?”

“...तू तो मानती ही नहीं। हाँ वे जेल में बंद हैं और उन्हें हथकड़ी डाली गई हैं सोने-चाँदी की, समझी.....?”

“...कहाँ, किसके यहाँ? और नानी, सोने-चाँदी की भी हथकड़ी होती है.....?”

“...हाँ, वे सोने-चाँदी वालों के यहाँ, डालमियाँ, टाटा के यहाँ गिरफ्तार हैं.....।”

“...तो मैं वहीं चली जाऊँगी और उन लोगों से कहूँगी कि हमारी नानी की अम्मा को छोड़ दो। वे बहुत दुखी होंगी और

बहुत दुबली भी हो गई होंगी। मैं उनसे कहूँगी—भाई छोड़ दो उन्हें, हमारी नानी अम्मा गुस्सा करती हैं और रोती भी हैं। उनके यहाँ रहने से आदमी, औरतें, बच्चे दुख करते हैं। नानी, हम उनसे भीख माँगेंगे, प्रार्थना करेंगे और यदि वे उन्हें आजाद नहीं करेंगे तो लड़ने को तैयार हो जावेंगे। मैं कोई दुबली-पतली थोड़े ही हूँ-हाँ, जो उनसे डरूँगी। देखो नानी कितने मोटे हाथ-पाँव हैं मेरे ? और हाँ नानी यदि उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी तो मैं तलवार से लड़ने को तैयार हो जाऊँगी जैसी सिनेमा में 'भाँसी की रानी' लड़ी थी। और तब आजाद करके ही लाऊँगी तेरी अम्मा को...। खुश होते हुए और नानी को खुश करने के लिए उषा ने कहा।

“...शाबाश मेरी बच्ची तू ऐसा ही करे। हाँ बेटी, तू ऐसा ही करेगी। जरूर तू 'भाँसी की रानी' बनेगी, मुझे तुझसे ऐसी ही उम्मीद है। लव और कुश भी तो तेरे ही बराबर थे जो न्याय की रक्षा के लिए अपनों से भिड़ने को तैयार हो गये थे...।” अचानक आँखों में आये हुए आँसू पोछकर (शायद प्रेम में) उषा को गले लगाते हुए उषा की नानी ने कहा।

“...हाँ मैं जल्दी ही डालमियाँ, टाटा के यहाँ जाऊँगी और तुम्हारी अम्मा को आजाद करके ही लौटूँगी...।” और वह अपनी नानी के गले में दोनों हाथ डालकर लिपट गई तथा कहने लगी—तो नानी री, तू मुझे जाने देगी न वहाँ, रोकेगी तो नहीं ? उस दिन देख न तूने मुझे सिन्बू और महेश के साथ तालाब नहीं जाने दिया था और न ही उस दिन काके के साथ गुरुद्वारे में प्रसाद लेने के लिए...। तू ऐसा ही करती है, मुझे कहीं नहीं जाने देती। अब जाने देना और हाँ पैसे बहुत से देना। रास्ते में जरूरत पड़ेगी न उनकी ? और नानी अच्छे-अच्छे पकवान बनाकर रास्ते में खाने को साथ रख देना। वैसे ही जैसे उस दिन अम्मा की बिदा के समय बाबूजी के साथ रखे थे...।”

“हाँ बेटी, तुझे जाने दूँगी, पैसे भी बहुत मे दूँगी और अच्छे-अच्छे पकवान बनाकर भी रख दूँगी-तेरे बाबूजी को दिये थे वैसे...।” ऐसा कह संभवतः प्यार में ही, एक बार नानी को फिर आँसू आ गये और उषा का चुम्बन कर उन्होंने उसे गले लगा लिया...।

रोटी खाते-खाते ही उषा को नींद आ गई। वह सो गई और अपनी कल्पना के अनुसार स्वप्न में डालमियाँ के घर पहुँच गई। वह उसी दुनिया में आ गई जहाँ की बात अपनी नानी माँ से कर रही थी। उषा को एक बड़ा भारी महल दिखा। उस अट्टालिका में बड़ी चमक-दमक थी और वहाँ बड़ी भीड़-भाड़ भी थी। दरवाजे पर पहरेदार खड़े थे। सैकड़ों-हजारों लोग आमने-सामने काम कर रहे थे। उसने जाना, वही डालमियाँ का मकान था। वह दिन भगवान महावीर का जन्म दिवस था। तभी खूब उत्सव हो रहा था और खुशियाँ मनाई जा रही थीं। भगवान महावीर का जन्मोत्सव था आज जो दया की मूर्ति थे। जिनके पास मे कभी कोई खाली हाथ नहीं लौटा। जिन्होंने सब कुछ देकर भी कभी कुछ किसी से नहीं लिया—उसी महात्मा की सालगिरह थी। लोग उस विशाल अट्टालिका के सामने मँह माँगी चीजें पा रहे थे। उषा से भी माँगने को कहा गया। उसने माँगी अपनी नानी-अम्मा की आजादी। ‘मुझे मेरी नानी बऊ की अम्मा को दे दो। मेरी अम्मा उनके दुख में बहुत दुखी रहती है और सब आदमी भी...।’

‘कौन है तुम्हारी नानी की माँ, जिनके लिए तुम्हारी नानी दुख करती है...।’

‘...उनके हाथ में तिरंगा झंडा रहता है। नानी और सब लोग उन्हें भारत माता कहते हैं...।’

‘अच्छा जाओ वहाँ, जो भी तुम्हारी नानी की माँ हो उन्हें ले जाओ... ।’

तभी थोड़ी दूर पर उसने तिरंगे झंडे के साथ भारतमाता को हाथ में हथकड़ी पहिने खड़े देखा । उनकी आँखों में थे आँसू और थी चेहरे पर मुस्कराहट । ‘पास जाकर और उनकी ओर इशारा करके उषा बोली-ये हैं हमारी भारतमाता-हमारी नानी की अम्मा-मेरी बड़ी नानी । अरे, तुम तो हथकड़ी पहिने हो-लोहे की । नानी तो कहती थी तुम सोने चाँदी की हथकड़ी पहिने होगी ? वो हमेशा ही ऐसा कुछ कहती है और झूठमूठ बोलती है । अच्छा अब जल्दी करो और घर चलो । नानी मेरी बाट देखती होगी और फिकर भी कर रही होगी । वह मुझे कहीं नहीं जाने देती । नहीं मातूम उसने यहाँ कैसे और क्यों आने से नहीं रोका... ?

...तभी हाथ पकड़कर और उनको साथ घसीटती हुई उषा चिल्लाकर भागी—नानी री नानी, देख मैं तेरी अम्मा को आजाद कर लाई यह भी कोई कठिन काम था जिसको तू इतना गुस्सा करती थी और रोती भी थी ? जल्दी आ देख ये रही तेरी अम्मा... ।

दरवाजे पर पहुँचते ही उसकी नाँद खुल गई वह अपनी नानी के पास सो रही थी । उसकी नानी ने सपने के उसके ये शब्द सुने थे । वह गद्गद् हो रही थी औरफूली नहीं समा रही थी अपनी अनोखी बेटी पर । उषा ने अपनी नानी बऊ से कहा-बाहरी नानी अच्छी है तू... । कैसी है री तू ? कितनी कठिनाई से तो तेरी अम्मा को लाई थी मैं और तू दरवाजे तक भी लेने न आई उसे ? जबकि मैं कितनी चिल्लाई... और फिर रोती है उसके लिये ? क्यों री तू ये भी तो कहती है यदि अपने यहाँ कोई अपने से बड़ा-गुरुजन-आवे तो उसका दरवाजे पर स्वागत करना चाहिये । फिर

तू क्यों नहीं आई अपनी अम्मा का स्वागत करने दरवाजे पर ?
हमीं को सब सिखाना चाहती है और खुद कुछ नहीं करती तथा
हमेशा ही झूठ बोलती है... । अभी-अभी वे हमारा हाथ पकड़े
दरवाजे तक आई थीं पर जाने अभी ही वे कहाँ चली गईं...
और यह सब तेरी ही गलती से हुआ है...।

मिनिस्टर की दिवाली

कहानी का शीर्षक देखकर आप एकदम कहेंगे कि क्या फालतू आदमी है जो बेमतलब की बातों पर ही कहानी लिखने बैठ जाता है ? या फिर कहेंगे—कि इस भले आदमी को छपास और लिखास का सिरदर्द या रोग है तभी छोटी-छोटी चीजों पर भी कहानी लिखे बिना नहीं मानता । यहीं देखिये—मिनिस्टर की भी कोई अलग से दिवाली होती है ? अरे जैसी हम लोगों की दिवाली वैसी मिनिस्टर की दिवाली पर यह आदमी है जो कहानी लिख बैठा...

यदि आप ऐसा कहते हैं तो मैं कहूँगा—मेरे भाई आप नहीं समझे, बिलकुल ही नहीं समझे...। हर आदमी की अपने-अपने तरह की अलग दिवाली होती है । क्या सेठ तख्तमल, बाबू बनारसीदास, कंगाली बड़ई और ठलुआ चमार की दीपावली में आपको पिछली दिवाली पर कुछ अन्तर नहीं दिखा, फिर यह दिवाली तो, जिसका मैं बयान यहाँ करूँगा—मिनिस्टर की दिवाली है जिसके पास धन-दौलत, पद-सत्ता, सब कुछ है, उसकी दिवाली का क्या कहना...?

तो दोस्तो, बात पिछली दिवाली की ही है । राजधानी से धूल और कोयला मन्त्री का सागर जिले में गोकुलपुर गाँव के दौरे का फरमान जारी हुआ । मालगुजारी खतम होने तक यह गाँव माननीय मंत्री के एम० एल० ए० भतीजे सेठ गोपीकृष्ण की राजधानी रहा है । मंत्रीजी को अच्छी तरह मालूम है कि इस गाँव में अनादिकाल से कभी कोई चीज पैदा नहीं हुई है पर चूँकि वे गोकुलपुर को 'काटन-इंडस्ट्री' का केन्द्र बनाना चाहते हैं इसलिये अब वहाँ पर कपास पैदा होगा, लोहे-कोयले की खदानें होंगी और यही नहीं वहाँ की जलवायु भी गीली हो जावेगी । अरे भाई,

मिनिस्टर चाहे तो बिना पानी के तालाब में मछलियाँ रहने लगे, चट्टानों पर खेती होने लगे और उन आदमियों को भी बी० ए०, एम० ए० की डिग्रियाँ मिलने लगे जिनके पैर कब्र में लटके हुए हैं। मिनिस्टर साहिब ने सोचा बहुत दिनों से अपने इकलौते भतीजे के यहाँ महमाननवाजी भी नहीं हुई है, चलो सरकार का पैसा खर्च होगा, अपना भत्ता बनेगा और भतीजे के घर की दिवाली होगी, जिसके लिए वह कई बार कह भी चुका है।

वह भी एक जमाना था जब सेठ गोपीकृष्ण भूतपूर्व एम० एल० ए० की जमींदारी में डमली के भाड़ों में भी आम फला करते थे पर क्या, कमबख्त एम० एल० ए० गिरी के न रहने से वे जाने कौन-कौन से सुखों से मरहूम हो गये और आजकल तो सरकारी तकावी, ट्रेक्टर लोन, बैंकों की खरीद आदि के कर्ज के पेमेन्ट के लिये ही डिप्टी कमिश्नर और उसके कार्यालय के अन्य अफसर उन्हें परेशान किये रहते हैं। मिनिस्टर साहिब ने सोचा, त्यौहार मनाने के इस नये और अनोखे तरीके के साथ ही साथ मेरे संबंधों का पता जब नये जिलाधीश महोदय को लग जावेगा तो मेरा भतीजा, इन रोज-रोज की झंझटों से भी छुट्टी पा जावेगा और पहिले ही की तरह मेरा राजाभैया रोब गालिव किये रहेगा। सरकारी पैसों का खर्च होगा और उसी भरे में हम लोगों का यह काम भी हो जावेगा। उस गाँव में आम चर्चा है कि वह तीन सौ घर का सड़ासा गाँव गोकुलपुर, उन भूतपूर्व एम० एल० ए० महोदय की कृपा से ही तहसील होने जा रहा है। उसी कारण आजकल (राष्ट्रीय सेवा विस्तार योजना केन्द्र हो जाने के कारण ही) वहाँ बहुत से दफ्तर भी खुल गये हैं। लोगों का तो यहाँ तक ख्याल है कि गोकुलपुर के पास से जो रेलवे लाइन निकली है वह सेठ गोपीकृष्ण के स्वर्गीय पिता सेठ उमानाथ जी की कृपा से ही निकली है। वो तो सेठ जी उस समय पूजा पाठ में व्यस्त थे

वरना लाईन घर के सामने से ही निकलती और उनके घर में रेलवे स्टेशन होता। अब लोग तो हैं अहसान फरामोश आज कल के और वह भी खासकर गोकुलपुर के, वरना कौन नहीं जानता कि सेठ गोपीकृष्ण के चाचा की शानोशौकत के कारण ही सरकार को उनके घर के सामने से सड़क बनाना पड़ी-वरना कौन पूछता था उस सड़े गले गांव को ?

दीपावली के एक दिन पहिले, सुबह ही, जिलाधीश महोदय का हुक्म गाँव के अफसरों के पास पहुँचा कि माननीय मंत्री महोदय गोकुलपुर गाँव का दौरा करेंगे। स्वागत की जोरदार तैयारियाँ की जावें और उस रात स्थानीय अफसरों की सुविधा के लिये पाँच छः कुली भी स्टेशन पर भेज दिये जावें। पूरे दफ्तर में इस घटना से असंतोष मच गया। ये कैसी हैवानियत है, त्यौहार के दिन मिनिस्टर लोग दौड़ा निकालते हैं ? बाहरी नौकरी-तेवहार मनाना, बालबच्चों के साथ बैठकर एक दिन खाना खा सकना भी हराम हो गया है। पर क्या यदि नौकरी करना है और पेट में रोटी पहुँचाकर जिन्दा रहना है तो यह भी करना होगा। सेठ गोपीकृष्ण की खुशी का तो ठिकाना नहीं है। उसने तमाम गाँव के लोगों, दफ्तर के अफसरों और बाबुओं को बुलाकर (क्योंकि इतना प्रभाव तो अब भी उसका वहाँ था) एक छोटी-मोटी सभा की नियोजना करके ऐलान किया-भाईयो माननीय मंत्री अपने यहाँ आ रहे हैं यह सबको ज्ञात ही होगा ? यह हमारे गाँव के लिये ही नहीं बल्कि पूरे सागर जिले के लिए महान गौरव की बात है। गाँव के किसान, अपनी किसानी का काम छोड़कर, और मजदूर-मजदूरी करने न जाकर मिनिस्टर साहिब के स्वागत की तैयारी में जुट जावें क्योंकि रोजी-धंधे और खाने-पीने का काम तो हम रोजमर्रा ही करते हैं, पर मिनिस्टर साहब अपने यहाँ कब-कब आते हैं...? गाँव को बेहद सजाया जावे,

दीपावली मनाई जावे और बनाये जावें गाँव भर में दरवाजे। मेरे घर के सामने भी तीन दरवाजे होंगे। एक बनेगा सड़क पर और दो होंगे घर में ही तथा यह सब काम होगा-भूरे चमार और खंजे तेली के द्वारा। देखो तो तकदीर की बात कि मिनिस्टर साहब के शुभागमन के दिन ही दिवाली पड़ी...? उनके आगमन पर गाँव में न्याय-पंचायत आफिस से उन्हें मानपत्र दिया जावेगा और उनका सार्वजनिक अभिनंदन होगा। हेडमास्टर साहब उस मानपत्र को तैयार करेंगे, गाँव के लोगों के चन्दे से उसका बढ़िया सा प्रकाशन होगा तथा पढ़ने का कार्य मेरे द्वारा होगा। अब समय थोड़ा रहा है। आप लोग अपने-अपने काम में लग जाइये और इस तरह आज की सभा यहीं बर्खास्त होती है। देवीसिंह हेडक्लर्क के कहने से भूरे चमार और खंजे तेली को उनके उपरोक्त काम के अलावा २॥ बजे रात को स्टेशन जाकर अफसरों का सामान ढोने का भी आदेश सेठ जी द्वारा हो गया।

दीपावली के एक दिन पहिले दोपहर को शराब के महान केन्द्र दारुना नगर से मिनिस्टर साहिब की सवारी दो डिब्बों की स्पेशल ट्रेन द्वारा गोकुलपुर रवाना हुई। एक डिब्बे में थे अकेले मिनिस्टर साहिब और दूसरे में उनका भाषण सुनने वाली जनता तथा प्रचार विभाग के अनेक अधिकारी फोटोग्राफर वगैरह। गणपतिपुर और गिरपर स्टेशन के बीच भयानक जंगल में अचानक गाड़ी खड़ी हो गई। लोगों ने आश्चर्य से देखा जंगल में मंगल हो रहा है। जिले के अधिकारियों ने उक्त स्थान पर माननीय मंत्री द्वारा वृक्षारोहण कराने का प्रबन्ध किया था और इसी पुण्यपर्व पर जिला वन अधिकारी द्वारा वहीं जलपान का आयोजन भी था। वहाँ का जंगल, वृक्षारोहण होने के लिये, साफ करा दिया गया था। सैकड़ों कुर्सी टेबिलें रखी थीं और लाउडस्पीकर्स में से रिकार्ड चिल्ला-चिल्ला कर गा रहा था 'मगर हम हमेशा तुम्हारे रहेंगे...!'

मिनिस्टर साहिब गाड़ी से लपककर उतरे और उन्होंने जिलाधीश से पूछा-जनता कहाँ है, वे भाषण देवेंगे...? अब वहाँ जंगल में जनता कहाँ थी? तमाम उपस्थित अफसरों और डिब्बे के आदमियों ने जनता के स्थान पर बैठकर शोभा बढ़ाई। मिनिस्टर साहिब ने गांधीजी का 'रिफरेन्स' देकर जंगलों की आवश्यकता बताते हुए कि किस तरह गाँधीजी सम्पूर्ण देश को जंगलों में परिवर्तित करा देना चाहते थे, एक सारगर्भित भाषण दे डाला और बीच-बीच में कई बार मुस्कराकर डी० एफ० ओ० महोदय द्वारा आयोजित चायपार्टी तथा जंगल की बढ़िया सफाई की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस तरह शाम होते-होते कुशलतापूर्वक फूल-मालाओं और जनता जनार्दन की बददुआओं से लदे मिनिस्टर साहिब सागर सर्किट हाऊस में पधारे।

इधर शाम से ही गोकुलपुर में मिनिस्टर साहिब के स्वागत की तैयारियाँ शुरू हो गई हैं। धन्य भाग्य उस गाँव के और गाँव के लोगों के जो, दिवाली के दिन, वर्ष वर्ष के त्यौहार के रोज, इतना बड़ा महमान उस गाँव में आ रहा है। पर एक रात ही तो बाकी है और इतना-ऐसा प्रबन्ध करना है, कैसा क्या होगा? भूरा चमार और खँजे तेली, दरवाजों के अपने काम में व्यस्त हैं। वहाँ भूरे चमार की बीबी प्यारी एक महीने से डबलनिमोनियाँ के कारण बीमार है। घर पर उसकी देख रेख करने वाला कोई नहीं है जबकि उसकी ऐसी स्थिति है कि आज मरे कि कल...? पर मालिक का हुक्म तो दरवाजे बनाने का है। उसे पूरा नहीं करेगा तो खाना कहाँ से मिलेगा, गाँव में कैसे रहेगा? वह सोचता है, दोनों जगह मौत है-यहाँ भी, वहाँ भी। कहीं मरना है, यह सोचकर भूरे रह गया। वह जी तोड़कर काम कर रहा है जिससे दो बजे रात के पहिले काम खत्म हो जावे तभी तो वह २॥ बजे बड़े साहब लोगों का समान लेने स्टेशन पर पहुँच सकेगा? भूरे का दुर्भाग्य, ग्यारह-

बारह बजे जोर का पानी गिरा। ठंड खूब हो गई थी पर फिर भी भूरा और खूँजे जुटे रहे लेकिन काम खतम न हो पाया। निश्चित समय पर ये लोग स्टेशन पर पहुँचे पर क्या, बड़े अफसर लोग ज्यादा ठंड हो जानें के कारण नहीं आ सके थे-भला कैसे आते? भूरा सरपट दौड़ता हुआ जमींदार के दरवाजे पर आया और ५ बजे सुबह तक काम खतम करके जब घर पहुँचा तो दरवाजे पर उसने अपनी बिरादरी के लोगों को, प्यारी की लाश श्मशान ले जाने की तैयारी करते पाया। बात यूँ हुई कि रात को बेहोशी में पानी माँगती हुई प्यारी घर के सामने के कुएँ की ओर दौड़ी और उसमें गिरकर मर गई। इस तरह सब कुछ देकर-यहाँ तक सब कुछ की कुर्बानी भी मर कर, मिनिस्टर साहब के स्वागत में उसने हाथ बँटाया। भूरे ने यह सब देख-सुनकर, अपना सिर पत्थर से मार लिया। लोगों ने जब उसे पकड़कर विस्तर पर लिटाया तो वह जोरों से बीमार था। प्यारी की अरथी जिस समय निकली उस समय गोपीकृष्ण-सदल न्यायपंचायत आफिस की ओर अपने सम्मानिय अतिथि का अभिनंदन करने जा रहे थे। लाश देखकर गोपीकृष्ण बोले-क्या अपशकुन हुआ घर से निकलते ही? इसको भी अभी मरने की पड़ी थी...? किसी दूसरे समझदार और भले आदमी ने कहा—चलो अच्छी सुधर गई बेचारी, कई दिनों से बीमार थी फिर उसकी देख रेख करने वाला भी तो कोई न था? भूरा दिन-रात यहाँ लगा रहता है, उसे औरत की देखरेख करने की फुरसत भी नहीं थी...? चलो अब फुरसत ही फुरसत है।

वहाँ श्मशान में भूरे की प्यारी को आग दी गई थी यहाँ मिनिस्टर सा० अपने अभिनंदन का उत्तर देते हुए कह रहे थे—भाइयाँ, आप सबका मेरे लिए यह प्रेम और इतना बहुत-सा इन्तजाम देखकर मुझे बड़े आनन्द का अनुभव हो रहा है। जो कुछ आज आपने यह सब किया है यह तो जरूरी है, इसे होना

ही चाहिये। काँग्रेस का ऐसा स्वागत होना परम आवश्यक है क्योंकि अतिथि सत्कार हमारे देश की बड़ी पुरानी परम्परा है। मैं इस गांव की बड़ी उन्नति चाहता हूँ तभी यहाँ कपड़े का कारखाना खोल रहा हूँ। (तालियों के लिए थोड़ा ठहर कर) गांधीजी का नाम आप लोगों ने सुना ही होगा। वे बहुत बड़े आदमी थे। हम उनके सामने कोई चीज नहीं हैं। हम तो बस मजे से उनके लगाये हुए पेड़ के फल खा रहे हैं...ही...ही...ही... (हँसकर)। पर गांधी जी को हमारे बीच के एक आदमी ने मार डाला, बहुत बुरा हुआ। मैं इससे बहुत दुखी हूँ। (आँखों पर दो तीन बार इत्र में सने सलौने रुमाल को फेरकर) बात यूँ हो गई कि उन दिनों मैं होनोलुलु अंतर्राष्ट्रीय कोयला मंत्रियों के अधिवेशन में अध्यक्षता कर रहा था और गांधीजी को मार डालने का निश्चय मेरे साथियों ने मेरी गैरहाजिरी में ही कर डाला। मुझे गांधीजी की मौत का बड़ा अफसोस है और उससे भी ज्यादा दुख है अपने साथियों की फाँसी का। गांधीजी के मर जाने से अब हमारे सामने बड़ी-बड़ी समस्याएँ पैदा हो गई हैं। बहुत काम बढ़ गया है तभी हमारी सरकार मिनिस्ट्रों की संख्या भी बढ़ा रही है। अंग्रेजों का राज्य इसीलिये खराब था कि वे लोग मिनिस्टर और बड़े अफसर कम रखते थे। इतने बड़े देश का प्रबन्ध थोड़े लोगों से कहीं हो सकता है—अब आप ही बताइये ? अर्थात् बिल्कुल नहीं हो सकता है। अबकी बार जब मैं आऊँगा तो मेरे साथ मेरे अलावा तीन और मंत्रीगण आपके अतिथि होंगे। उनमें से एक होगा कोयला मंत्री, दूसरा होगा धूल मंत्री और मैं होऊँगा अपने डिप्टी मिनिस्टर के साथ बिना विभाग का मंत्री। ईश्वर ने चाहा कहीं अपने राजा भैया चुनाव में जीत गये जिसकी पूरी उम्मीद है तो बस मेरे उपमंत्री वही होंगे क्योंकि एक विभाग का पूरा कार्य एक घर के लोगों से ही अच्छी तरह से हो सकता है...। गांधीजी हर

गांव को शहर बनाना चाहते थे। मैं भी इस गाँव को धीरे-धीरे तहसील और बाद में जिला बनाकर ही चैन लूँगा (सेठ गोपीकृष्ण के इशारे से तालियाँ) शिजा की ओर भी मेरा ध्यान गया है। मेरी सरकार और मैं आपको आश्वासन दिलाता हूँ कि पांच वर्ष के भीतर ही भीतर सबको निरक्षर बना दूँगा। और..... (तालियाँ)...और गांधीजी का आशीर्वाद तथा आप सबका सहयोग मुझे इस पुण्य कार्य में भी योग देगा। हमारे राजा मैया (सेठ गोपी कृष्ण का लाड़ का नाम) इस कार्य में दिलचस्पी ले रहे हैं, सरकार उनको इस कार्य के लिए धन्यवाद देती है। पर मुझे पता पड़ा है (जरा गंभीर होकर) कि यहां के कुछ स्थानीय बड़े अफसर उनके काम में सहयोग नहीं दे रहे हैं। अपने भतीजे की ओर देखकर तथा जिलाधीश के कंधे पर हाथ रखकर, मिनिस्टर साहिब ने अपना भाषण जारी रखते हुए कहा, परन्तु मैया, यू आर नाट टू वादर नाऊ, कृष्णानन् इज हियर...; अब सब ठीक होगा। बस आप लोगों को अपना काम करना चाहिये। मजदूरी-खाने पीने की न तो चिन्ता ही करना चाहिये और न बात ही। इससे हम लोगों की शांति में गड़बड़ी होती है। आपको शायद मालूम नहीं है गांधीजी इसीलिए उपवास के बड़े समर्थक थे। आप नहीं जानते, अमेरिका और रूस में हिन्दुस्थान से भी ज्यादा गरीबी और भुखमरी है पर यदि वहां कोई रोटी की बात सरकार से करता है तो उसे गोली मार दी जाती है। हमारे देश में पढ़े लिखे लोग नौकरी के लिए चिल्लाते हैं और सरकार की अनुचित आलोचना करते हैं। आपको संभवतः ज्ञात नहीं है रूस और अमेरिका में कितनी बेकारी है, वहां पढ़े लिखे लोग मारे-मारे फिरते हैं, यहाँ तो सौभाग्यवश बिना पढ़े लिखे या कम पढ़े लोग मिनिस्टर भी हो जाते हैं। ज्यादा पढ़े लिखे लोगों के लिए हमारी सरकार ने राष्ट्र निर्माण और अन्य जिम्मेवारी के कार्य मसलन—स्कूलों की

अध्यापनगिरी, दफ्तरों में बाबूगिरी, पोस्टमैनी और पुलिस कान्स्टेबल-गिरी, जैसी जगहों की नियोजना की है। अध्यापन कार्य को आप लोग क्या समझते हैं ? वाह उस जैसा पुनीत कार्य-विद्यादान-महादान...वाह...। फिर शिक्षा तो मानसिक विकास के लिए होती है, ज्ञान भंडार बढ़ाते चले जाइये, नौकरी चाकरी की क्या जरूरत है...? इसलिये भाई मेरा नम्र निवेदन है, काम करो खाने पीने की बिलकुल चिन्ता न करो। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने यही तो कहा है—यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतं। बिलकुल वैसाही फारसी के मशहूर शायर गालब ने भी कहा है...मुहब्बत में...। भाइयो, मैं इस समय भूल रहा हूँ, खैर कोई बात नहीं। अंतिम बात जो मुझे आपसे कहनी है वह यह है कि मेरे सारे कार्यक्रम की खबर यत्र तत्र-सर्वत्र पत्रों में भेज देना। प्रचार बड़ी अच्छी चीज है। भगवान भी तो धर्मग्रन्थों द्वारा अपना प्रचार कराते हैं। और हाँ! चुनाव आ रहा है पास में, इसलिए आप अपनी सेवक, प्यारी संस्था कांग्रेस के लाड़ले-सुरीले प्रतिनिधि, हमारे राजा भैया, सेठ गोपीकृष्ण भूतपूर्व एम० एल० ए० को ही वोट दें, यदि उन्हें कांग्रेस का टिकिट मिल गया तो, जिसकी पूरी-पूरी संभावना है। उनकी सेवायें आप लोगों से छिपी नहीं है—अर्थात् आप सबको ज्ञात हैं और इतना कह मैं अपना आसन सादर ग्रहण करता हूँ। जयहिन्द...महात्मा गांधी की जय। हमारे प्यारे नेता जवाहरलाल नेहरू की.....।

और पंडित तिवारी हार गये

“.....दफ्तर से, सौ सवा सौ रुपये की सिर्फ सूखी रोटी ही दिलानेवाली गुलामी में आठ बजे सुबह से पाँच बजे शाम तक सिर मार कर, जब सीधे ही आप बाजार से तरकारी भाजी लेकर आठ बजे शाम को घर लौटेंगे तो स्वाभाविक ही है आपकी बीबी का मिजाज बिगड़ जायेगा और वह दो चार भली बुरी भी सुना डालेगी। ठीक है, औरत कोई लोंडियाँ या गुलाम तो है नहीं आपकी, कि सिर्फ सूखी रोटी और फटे-पुराने दो कपड़ों में ही चौबीस घंटे सब काम काज करेगी जबकि उससे दो शब्द तक किसी को बोलने की फुरसत नहीं है या फिर कोई चेष्टा भी नहीं करता...। लेकिन दोस्त, आज के इस बुरे समय में भी कम से कम हिन्दुस्तान में तो, ज्यादा नहीं पांच प्रतिशत ही ऐसी बीबियाँ अब भी मौजूद हैं जो सब दुःख और मुसीबतें हँसते-हँसते सह लेगीं यदि चौबीस घंटे में एकबार भी उनका पति उन्हें प्यार से पुकार कर दुलार ले...।’ अपने साथी धीरेन्द्र के गंभीरतापूर्वक कहे गये उपरोक्त प्रौढ़ अनुभव सुनता हुआ गुमशुम रोज की तरह अपनी बीबी की डांट की परवाह न कर साईकिल पर जब मैं सब्जीमंडी जा रहा था तो अचानक ही सीनियर स्टूडियो के पास मेरे मजेदार मित्र पंडित कृष्णकुमार ने साईकिल पर चढ़े-चढ़े ही, मेरे कंधे पर हाथ रखकर कहा-क्या आपको मालूम है पंडित तिवारी हार गये...? मैं जानता हूँ आपको बिलकुल पता नहीं होगा इस बात का। पर भाई, यकीन मानो मैं अकेला ही तो इस चार लाख की बस्ती में भाग्यवान हूँ जिसे सबसे पहिले इसका पता पड़ा था और तबसे मैं बड़ा दुःखी हूँ। दुःख का कारण

स्वाभाविक ही है, अपना जातभाई है खून का मामला ठहरा। सच मानो पंडित जी मैं तुमसे कभी-कभी इसलिये ही बोल लिया करता हूँ कि तुम मेरी जाति के ब्राह्मण हो। बरना कहाँ फुरसत है मुझको। भैया खून पानी से गाढ़ा होता है...है न ठीक...?

बिना मेरे जवाब या सवाल की इस छोटी मोटी तकरीर को सुनकर, धीरेन्द्र, मेरे इन नये मित्र की ओर देखता ही रह गया। तब कृष्णकुमारजी ने अपना बयान जारी रखते हुए कहा—मेरी ओर आप इस तरह घूर क्यों रहे हैं? क्या आपको भी नहीं मालूम कि तिवारीजी आज चुनाव में हार गये हैं। बड़े आश्चर्य की बात है, इतने बड़े आदमी का इतना बड़ा चुनाव और आपको कोई खबर-दबर भी नहीं है? तभी कॉफी-हाऊस की तरफ मुझे और 'हीरेन' को घसीटते हुए कृष्णकुमार भाई ने कहा—अच्छा चलो, तुम्हारी तरफ से एक-एक काफी और एक गोल्डफ्लेक सिगरेट चल जाय और फिर वहीं मैं इस 'सनसनीखेज' खबर को लगे हाथ सुना दूँ.....।

मुझे, मेरे अच्छे दोस्त का यह प्रस्ताव एकदम पसन्द आ गया। सोचा-चलो इन्हें तीन आने की काफी पिलाऊँगा और इनकी बातों में मुझे तीन रुपये का मजा मिल जावेगा। ऐसे लोगों को चाय-सिगरेट पिलाने में दरअसल मैं कोई अफसोस नहीं होता क्योंकि चाय-शाय के खर्च का 'रिटर्न' उनसे 'काइन्ड' या 'केश' में मिल ही जाता है और फिर पंडितजी उन ईमानदार और शरीफ लोगों में से हैं जो कम से कम चाय पानी के बाद आजकल के दोस्तों की तरह चूतिया या बेवकूफ तो चाय पिलाने वाले को नहीं ही कहते हैं...।

'काफी-हाऊस' में जाने के पहिले ही उन्हें सड़क पर पान खरीदते देख मैंने कहा—भाई साहिब पहिले काफी तो पियो। घबराते क्यों हो, पान और सिगरेट भी...'

दोस्त, बुरा न मानना । मेरा तुम्हारा 'कान्ट्रेक्ट' सिर्फ काफी और सिगरेट का है । पान मेरी ओर से रहेगा और फिर प्यारे, चाय की चुस्कियों के साथ मुँह में पान की गिलोरी और तम्बाखू न हो तो जिन्दगी क्या... ?

'चाय की चुस्कियों के साथ पान-तम्बाखू भी... ? तम्बाखू भी खाते हो... ? क्या 'टेस्ट' है तुम्हारा भी यार... ?

भाइयो, मैं कुछ नहीं खाता, पर सब कुछ खाता हूँ । आप जानते ही हैं मैं विशुद्ध शाकाहारी हूँ पर आप जैसे दयावान दोस्तों के प्यार भरे आग्रह को कैसे टाला जा सकता है, तभी वह भी करना पड़ता है-जब कभी दोस्त । तुम जानते ही हो, मैं कितना संकोची आदमी हूँ... ? उस दिन प्रभातकुमार भट्टाचार्य के कहने से सिगरेट पी ली और तब से सिगरेट की आदत पड़ गई है, बरना कहाँ पीता था मैं सिगरेट ? भले ही घर पर ज्योति की माँ की दो-दस बातें सुन लूँगा पर दोस्त कहेंगे तो बाई जी के यहाँ जाकर मुजरा सुनने से भी न चूकूँगा । मैं तो मित्र दोस्ती का कायल और दोस्तों का गुलाम हूँ—मानो या न मानो ? मेरी जान, जिन्दगी को ढकेलो आगे तब है, बरना क्या रखा है इस जिन्दगी जैसी थर्ड क्लास चीज में ? और फिर जिन्दगी भी कोई जीने की चीज है जो तुम कहते हो मेरा क्या टेस्ट है—मैं तम्बाखू खाता हूँ... ? जिन्दगी तो प्यारे एक दिल्लगी है, जो खुदाबन्द करीम ने हम तुमसे की है । यहाँ तो हमें जीने का माहोल तैयार करना पड़ता है । सोचता हूँ—जो कुछ देख सुन लूँ, मजा मौज लूट लूँ—वही हाथ है—बरना—कौन जीता है तेरी जुल्फ के सर होने तक ? खैर कोई बात नहीं, अब छोड़ो तिवारीजी की हार की बात यही की यहीं । ऐसी-तैसी हार-जीत की ! अपने को क्या किसी से मतलब मैया... ? और लो सुनो तम्बाकू जो है सो, तीन प्रकार की होती है । नंबर एक-प्राणघातिनी, जो दिल मोहिनी

के नाम से लंबी-चौड़ी शीशियों में बंद, बाजार में मिलती है। नंबर दो है आनंददायिनी का। आनंददायिनी-याने पीला या लाल खुशबूदार जरदा जिसे पान के शौकीन लोग खाते हैं। और पार्टनर, तीसरे प्रकार की तम्बाखू का नाम है स्वास्थवर्धिनी, जिसे मैं खाता हूँ। और यह रही वह मशहूर तथा मारुफ एवं हैरत अंग्रेजी चीज। तभी उन्होंने चूना तम्बाखू और सुपाड़ी को गदेली पर मलकर धीरेन के सामने हाथ करते हुए कहा—लीजिए साहब, ये महाशय तो खाते नहीं हैं, आप नोश फरमाइये। इस तम्बाखू को 'खैनी' भी कहते हैं...। अच्छा आप भी नहीं खाते, तो क्या खाते हैं फिर आप? अरे जिसने न खाई तम्बाखू... आपको शायद यह पता भी नहीं होगा कि अपने शहर में 'अखिल भारतवर्षीय टुबैको ईटर कान्फ्रेंस' हो रही है-अगले महीने में। उसकी सदारत के लिए मुझसे प्रार्थनायें की जा रही हैं। अब करना ही पड़ेगा...। तुम तो जानते ही हो, दोस्तों के कहने पर और दोस्तों के लिए यह गला भी कटा सकता हूँ। आप लोग जरूर आईयेगा। शहर के नामी नेता मेरे बाबू जी उसका उद्घाटन करेंगे। आना डालिङ्ग बड़ा मजा रहेगा...अच्छा...

'...अरे वाह, तुम भी खूब हो, तिवारी जी कैसे और क्यों कर हार गये यह तो बताया ही नहीं और बस लगे चलने...?'

'...अरे तुम भी क्या लगे हो यार? हार गये बस इसीलिये कि उनको सिर्फ बाईस वोटें ही मिली थी और उनके विरोधी जीत गये क्योंकि उन्हें इक्कीस वोटें मिली थी।

धीरेन को, इस अजीबोगरीब और मजेदार बात को सुनकर जोर से हँसी आ गई और वह बोला-आप भी खूब हैं बाईस मत मिले इसलिए तिवारी जी हार गये और इक्कीस वोटें...।

'...हाँ हाँ भाई २१ वोटें मिलने से जीत और २२ मिलने से हार हो जाती है, आप अभी कुछ नहीं जानते हैं दुनिया-दारी को। आप हँसते हैं, इसमें हँसने की बात ही क्या है?

मित्र यही होता है—जिसके हाथ में सत्ता, पोजीशन और पावर होती है, वह क्या कुछ नहीं कर सकता ? दोस्त, वह सब कुछ कर सकता है। रात को दिन और दिन को रात मनवा सकता है, जनता जनार्दन नामी भेड़िया धसान से। और जो सत्ता चाहता है या अपनी सत्ता कायम रखना चाहता है उसे आप मामूली आदमी समझते हैं ? वह क्या कर गुजरेगा—यह आप नहीं बल्कि मैं ही जानता हूँ। लोहे की उन चमचमाती—तमतमाती पेंटियों को देखकर कहोगे—वे टूटती नहीं है, टूट नहीं सकतीं ? भाई साहब बस एक तार का खेल है, पेंटी को अलग-अलग करके रखा जा सकता है। तिवारी जी हार गये क्योंकि भले आदमी हैं योग्य हैं, ईमानदार हैं और सब माने में सेवा करना चाहते हैं। चूँकि वे चुनाव हार गये इसलिए मैं तो कहूँगा—वे बिल्कुल अयोग्य और गधा हैं। जनता जब उनकी सेवाओं को अस्वीकार करती है, तो वे क्यों पीछे पड़े है सूर्य जनता के, लाठी लेकर उसे सीधा करने— ? मित्र वे योग्य होकर भी अयोग्य हैं क्योंकि बस जरा दूसरे फिरेके के हैं, साफ साफ कह देते हैं और ईमानदारी से काम करना चाहते हैं। चूँकि वे काम करना चाहते हैं इसलिये उन्हें हम नहीं चाहते, इलेक्शन आफ़ीसर नहीं चाहता और इलेक्शन आफ़ीसर की सरकार नहीं चाहती। अब करिये आप क्या करते हैं ? रही चुनौती आपको और आपके— ? खैर छोड़ो भी, अपने को क्या करता है ?...जी जीत गये तो क्या हुआ और क्या हो जावेगा, आप भी पड़े हैं ? और तिवारी जी जीत जाते तो क्या मेरे घर के सामने की उस अंधेरी गंदी कुलिया में लालटेन लगावा देते। अरे राम का नाम लो भैया। लालटेन लगवाने को और रोज सुबह जल्दी भाड़ लगाये जाने के लिए तो उनके घर से ज्यादा उपयुक्त स्थान और कौन हो सकता है ? भैया छोड़ो अब इन सड़ी गली बातों को। मैं तो सत्ताधारियों

से बड़ा डरता हूँ। आसपास वाले जो मेरी इन आड़ी-तेड़ी बातों को सुन रहे होंगे वे पागल, सनकी और गद्दार से थोड़ा भी कम न समझ रहे होंगे मुझे, तथा आपकी कृपा से कहीं कोतवाली में किसी ने जग सी खबर कर दी तो दूसरे दिन या उसी रोज तिवारी जी—मेरा मतलब यहाँ शहर कोतवाल श्री चन्द्रशेखर तिवारी से है—मेरे जातभाई और दूर के कुछ थोड़े-मोड़े सम्बन्धी होकर भी, कम्युनिष्ट—देशद्रोही बनाकर जेल के भीतर ढकेल देंगे। उससे और तो विशेष कुछ नहीं, पर फिर भैया एक बड़ी भारी घटना हो जावेगी कि ज्योति, अनन्दी और उनकी माँ को देखने सुनने वाला कोई न रहेगा...। ज्यादा बातें सुनना हो तो शाम को तिलक भूमि तलैया में हाजिर होओ। अपने राम को तो मरने की भी फुरसत नहीं। अब देखो न आज प्रान्तीय कान्यकुब्ज सम्मेलन में एक जरूरी प्रस्ताव रखने जाना है, बरना साथ ही होता। अच्छा दोस्त हुकुम हो तो चलूँ? पर आगाह किए जाता हूँ गाँठ बाँध लो—सत्ता वाले सब, कर सकते हैं और करवा भी सकते हैं। यदि जिन्दा रहना चाहते हो तो जय जयकार करते रहो उनकी और उनके जस्न में भूखे और दुखी होते हुए भी हँसकर हाथ बँटाते रहो, भले ही तुम्हारा दम घुट जावे और तुम्हें कुछ भी हासिल न हो सके। यही नहीं अब जरा दूसरी बातों पर भी नजर डालिये। ये कमीशन क्या है? बकवास—फालतू सी चीज। बिना पढ़े लिखे या कम पढ़े लिखे लोग, डी० लिट० तथा डबल एम० ए० वालों की परीक्षा लेते हुए सवाल पूछेंगे—आपने एम० ए० आर्ट्स में किया है या साइन्स में और फिर भी 'अनफिट' करार कर देंगे। कमीशन की माँगी हुई योग्यता यदि आप में है तो फिर आपकी खैर नहीं। माननीय सदस्य कहेंगे अच्छा होता यदि आप में एक्स्ट्रा—क्वालिफिकेशन और होती...? और कहीं दुर्भाग्यवश—हाँ इसे दुर्भाग्य ही कहेंगे जब

सरस्वती के भूखे पुजारियों को लक्ष्मी के दरवाजे पर ठोकर लगती है और वे दाने दाने को मुहताज रहते हैं, आप ज्यादा पढ़े लिखे हैं तो 'ओवर क्वाली फाइड' होने के कारण भगा दिये जावेंगे। नियुक्ति पहिले हो जावेगी और विज्ञापन में अपने 'उम्मी' रिश्तेदार 'केन्डी डेट' की योग्यता का प्रकाशन कर यह निर्दयी सरकार एक, सिर्फ एक ही और वह भी भरी हुई जगह के लिये एक सौ एक गरीब भूख से बिलबिलाते-तिलमिलाते इन्सानों के मुँह की रोटी छीनेगी—कमीशन की फी के रूप में। और दोस्त जानते हो गरीबों की आह—तड़पन वह पैसा, घुट घुटकर मोटरों से धुँए के रूप में निकल जावेगा पर कमीशन के सदस्य बिलकुल बेखबर रहेंगे—इस बेवसी से। तथा इतने से ही उन्हें चैन नहीं मिलेगी तभी सवाल ऐसे पूछेंगे, जिनके जवाब वे खुद भी नहीं जानते या फिर 'एकाउन्ट्स केन्डीडेट' से उपन्यास और कहानी का अंतर पूछकर अपनी होशियारी का परिचय देंगे। अंत में कमीशन योग्यता के कारण आपको अयोग्य करार कर देगा क्योंकि आपकी रिश्तेदारी या पहिचान मंत्री या किसी बड़े अफसर से नहीं है अथवा आपके पिता मुख्य मन्त्री के दोस्त नहीं हैं। कही भूलचूक से ही आपका सम्बन्ध निकल पड़ा उपरोक्त महाशयों में किन्हीं एक से ही तो फिर क्या, आप गधा होकर भी आदमी हैं। बस आपके सींघ और पूँछ काटकर आपको 'क्लासबन' का आफीसर बना दिया जायेगा। इतना ही नहीं प्यारे आप एग्नीकल्चर के ग्रेज्यूेट होकर भी कहीं के डी० एस० पी० बनने के अधिकारी होंगे। यही जहूड़ा है सत्ता का। तभी कहता हूँ—सत्ता की-सत्ताधारियों की जय-जयकार करो यदि जिन्दा रहने की ख्वाहिश है तो, वैसे आपकी मर्जी है? अरे छोड़ो भी यार ये बातें, कहाँ की बकवास शुरू हो गई थी। ये तो लक है मेरी जान जिसका जैसा है। सितारों की बुलंदी बड़ी

चीज होती है। कहो राजा को पानी भरवादे, भिखारी को तख्त पर बिठलवा दे ? अपने को इसमें क्या शिकायत बाबा... ? फिर जिन्दगी बड़ी हसीन और पुरलुत्फ चीज है। ऐसी फालतू और गंभीर बातें कहने सोचने से फायदा ही क्या क्या है ? अपने राम तो सोचते हैं— एम० ए० पास होकर भी कुछ नहीं पढ़ा। वह नहीं पढ़ा जिससे मेरे पास कार होती, दस-पचास लोग साथ चलते और यही नहीं मेरे भाषण पत्रों में छपते ? कार तो मित्र, अगले जन्म में ही हासिल हो सकने की संभावना है यदि कहीं धोखे से किसी मिनिस्टर का लड़का हो गया, इस जन्म के पुण्य के कारण जो प्रायः नहीं ही हैं। सोचता हूँ—अयोग्य हूँ तभी एम० ए० हिन्दी में पास होकर एकाउन्ट्स में १३०) माहवार की बाबूगिरी करता हूँ। पर प्यारे अपने राम को तो संतोष है। जितनी अपनी कदर—तनखाह (क्योंकि मैं आज के इस जमाने में इन 'टर्म्स आफ् मनी' ही आदमी की कदर को देखता हूँ) उतना सरकार—माईबाप का काम। बस भंग पीकर जाना, ताकि अफसर द्वारा किए गये मान अपमान का ख्याल न रहे, दुख न हो। मस्ती रहती है और भंग खाने के पहिले की बातों का—मसलन, मुन्नी की मां की चाय पिलाते समय की मीठी मीठी चुटकियाँ, सुबह सड़क पर भाड़ती हुई जमादारिन की हँसीन लड़की का कनखियों से मेरी ओर देखना तथा मेरा यह सब देख सुन कर अकड़ जाना भर ख्याल रहता है। बस मजा आ जाता है यार। अपनी भी जिन्दगी का कोई महत्व है ? हम लोग भी कहीं किसी से नाराज होने को बनाये गये हैं...तोबा...तोबा...। तनखाह के अनुसार काम, एक्स्ट्रा कामों के लिए साफ कहना—काम नहीं आता क्योंकि—जो तन खों सुख चाहो तो बुद्ध बनकेंख...। तभी मौज रहती है और क्या...?

अब आप फिर यह कहेंगे—मैं भी क्या थर्ड क्लास आदमी

हूँ जो भाड़ूवाली को देखता हूँ। तो मैं कहूँगा—दोस्त में बिलकुल फर्स्ट क्लास आदमी हूँ। यह जो दुनियाँ है न भैया, बिलकुल बुरी है—बिलकुल बुरी और उसके आदमी जो हैं न—सो महान् नीच हैं ईश्वर की कृपा से और मैं नीचातिनीच हूँ। मैं इस होशियार और अपने को बहुत ही शरीफ समझने वाली दुनियाँ के हर आदमी को बुरा मानता हूँ जब तक कि उसकी अच्छाई सिद्ध न हो जावे। अच्छा गुडलक प्यारे, खूब ठाट रहें तुम्हारे—अलविदा...!

उनके कंधे को दबाकर विठालते हुए मैंने कहा—ऐसा भी क्या जरा सेठ जी के भूदान दौरे की तकरीर को उसी तर्जोबयाँ से कहकर जाओ और बस जियो जब तक जबलपुर के तालाबों में पानी है तुम्हारी उम्र हो हजार बरस और...।

‘...और हर वर्ष के हों दिन पचास हजार...यही न...? वाह मेरी जान, तुम तो होशियारी में मेरे पिता पंडित रामकुमार निकले। एक कप काफी और एक रुपये की कीमत की गर्मागरम खबरें—फिर भी जी नहीं भरा? चलो नहीं मानते हो तो बस एक कप स्पेशल चाय और हो जावे तथा मैं बाबू साहिब का भाषण लगे हाथ सुना दूँ...।’

और भाषण के बाद जब मैं सड़क के उस पार से पान लेकर लौटा तब तक, धीरेन से—अभी आते हैं कहकर, पं० कृष्ण-कुमार नौ दो ग्यारह हो चुके थे...।

तभी से रोज मैं सोच लेता हूँ—यह है क्या आखिर? तिवारी महाराज २२ वोटें पाकर अपने विरोधी से हार गये जिसे २१ वोटें ही मिलीं थीं। कमीशन में कम पढ़े-लिखे या बिना पढ़े-लिखे लोग योग्यता का चुनाव करते हैं और निडरतापूर्वक योग्यता को अयोग्य करार दे देते हैं। कृष्णकुमार महाराज भंग खाकर आफिस जाते हैं ताकि अपमान और दुख का ध्यान ही न रहे और चूँकि

उन्हें नौकरी करना है इसलिये यह जरूरी है कि वे अपमान सहना सीखें, इस पुनीत कार्य की आदत डालें क्योंकि अपमान तो जरूर सहना पड़ेगा, चाहे उनकी इच्छा हो अथवा न हो। थोड़ी तनख्वाह के कारण लोग काम नहीं कर पाते हैं और तभी जी चुराते हैं...इसे क्या कहा जावे...?

तब एक बात मुझे कुछ शांति देती है। ठीक है जब योग्यता के कदम कोई नहीं हैं। एम० ए० पास वाले को हजार आरजू मिन्नतों के बाद एक सौ तीस मिलते हैं तो फिर उतना ही उससे काम कोई ईमानदारी से ले सकेगा। बाकी काम के लिए उसका अयोग्यता सिद्ध करना स्वाभाविक है। यदि इसमें भी ईमानदारी बरतेगा तो फिर दुनियाँ की हँसी मजाक सुनने-सहने की शक्ति और घर के भूखे आदमियों का चीखना चिल्लाना सुनने की ताकत भी तो उसमें रह सके ? पंडित कृष्णकुमार का 'इंटरव्यू' में कभी न जाने का निश्चय भी अपने राम को पसंद है, जब उनकी किसी बड़े आदमी से रिश्तेदारी नहीं है उनको किसी का 'पुश' नहीं है और न उनके हाथ में कुछ सत्ता-वक्ता ही है...। तभी बरबस ही मेरे मुँह से निकल पड़ता है—सत्ताधारियों की जय, ऊँचे मकान और ऊँची दुकान वालों की...।

गुलाबो

गुलाबो कल यही तो कह रही थी सिर्फ—कि मर्द के बच्चे हो, पत्थर में लात मारो तो पानी निकल पड़ेगा। चोरी क्यों की ? मर्द हो मर्द—शेर के बच्चे। मजदूरी करो, मेहनत करो। पसीने की कमाई सार्थक होती है—अंग लगती है, हरामखोरी की नहीं। मैं कितनी बार कह चुकी हूँ यूसुफ कि मैं चोरी को, चोरी करने वाले को नफरत करती हूँ पर तुम हो जो बाज नहीं आते। फिर चोरी की भी, तो मुझे बता तो दिया होता। बताना तो दूर रहा, इस तरह डरकर भागे कि उस दिन से जलवा ही न दिखाया और नींद हराम कर दी मेरी। मैं वैश्या हूँ पर औरत भी तो हूँ। मैंने प्यार किया है सिर्फ तुम्हीं से। तुम समझते हो कि मैं किसी से भी प्यार करने लगती हूँ, क्योंकि हर आदमी से हँसती बोलती हूँ न। तो मैं कहूँगी मेरे भोले यूसुफ तुम भूलते हो और प्यार के खेल के कच्चे खिलाड़ी हो। यह तो मेरा धंधा है। यदि हँसकर न बोलूँ—न देखूँ, तो मेरे पास कौन आवेगा ? औरत हर एक के घर में होती है। आदमी इसी नाजोअंदाज पर तो मरने कटने आता है और इसी की कीमत मुझे मिलती है, वरना कौन पूछेगा मुझे—तुम्हारी गुलाबो को ? पर यकीन मानो, प्यार सिर्फ तुमसे ही किया है मैंने जिन्दगी में और प्यार को अलग करके तुम्हारे सामने गुलाबो नहीं सेलोलाइट की एक गुड़ी रह जायगी जिसमें चाबी भरोगे तब वह चलेगी, ताली बजावेगी। यूसुफ, मैं वैश्या ही तो हूँ चोर तो नहीं हूँ। किसी को भोखा तो नहीं देती, हरामखोर तो नहीं हूँ। बस ईमानदारी की कमाई खाती हूँ और खिलाती हूँ। मैं चोर नहीं ईमानदार हूँ। अपने जिस्म को बेचती हूँ, अस्मत् का व्यापार करती हूँ और मौज

करती हूँ। खुद खाती हूँ और तुम्हें खिलाती हूँ। तुमसे कभी यह तो नहीं कहती कि तुम काम करने जाओ। जब तक इस चेहरे में झुर्रियाँ नहीं पड़ी हैं, खून में गर्मी है तथा शरीर में काट करने की ताकत है तब तक मजा करती हूँ और तुम भी मजा करो प्यारे। चलो अब घर। खूब बातें हुई, बाकी अब घर करेंगे। ये देखो, सरदार की होटल से तुम्हारे लिए कलेजी लाई हूँ दोनों खाँयेंगे और.....।

जैसा गाँव से लौटते हुये मैंने और राजाराम ने स्टेशन के पास की पान की दूकान पर दिन दहाड़े पचास आदमियों के सामने, अपने रखे हुए आदमी यूसुफ का हाथ पकड़े हुये गुलाबो को जब ये बातें करते देखा तो दंग रह गया। सच्ची मुहब्बत, ईमानदारी और दिलेरी की यह बेनजीर मिसाल भी। उसकी दिलेरी और दरियादिली तो राजा कर्ण की दानशीलता और बहादुरी को भी मात कर देगी। उसकी भाषा में स्पष्टवादिता और मिठास मुझे पुरुषोत्तमदास टंडन से भी ज्यादा मिली और सच मानिये सचाई और ईमानदारी तो उसमें जवाहरलाल से एक लाख गुनी ज्यादा थी। क्योंकि यह उसके दिल की आवाज थी—प्राणों का अनुभव। उसे थोड़े ही किसी को भूठ-साँच बोल-बताकर अपना काम बनाना है। इन लोगों की बातें सब फर्जी होती हैं—अनुभवहीन। ये अपना उल्लू सीधा करने को अपना राज चलाने को ऐसा वैसा कुछ तो भी कह दिया करते हैं। कोई सचाई ईमानदारी आप इनमें और इनकी बातों में नहीं पावेंगे।

मैं यह सब देख सुनकर, अपनी शर्म और हया छोड़ वहाँ खड़ा हो गया। तभी मेरे एक शरीफ मित्र कहे जाने वाले दुश्मन ने पूछ ही तो लिया, अरे तुम यहाँ.....? क्या कर रहे हो.....?

‘भाई साहिब, शराफत ईमानदारी और प्यार भरे दिल की खोज में वर्षों से था। आज मुझे यहाँ सब एक साथ मिल गया है,

उसे देख सुन रहा हूँ' मैंने कहा। और तब हँसते हुये मुझ पर ही, मेरे यार ने रास्ता ली।

“.....अच्छा मैं हरामजादी हूँ—नीच, कमीन.....? मेरी पुलिस में रिपोर्ट कर दोगे, फाँसी पर चढ़वा दोगे क्योंकि मड़क चलते एक औरत ने तुम्हारा हाथ पकड़ लिया और वह वेश्या है? यूसुफ, मैं तो खुले आम धंधा करती हूँ। सारा शहर जानता है गुलाब अठन्नी छाप वेश्या है। जिसकी जेब में पैसा होता है वह मेरे यहाँ आता है। पैसे वाले के लिए मेरे घर का दरवाजा हर समय खुला रहता है। पुलिस क्या करेगी मेरा। पुलिस क्या जानती नहीं कि मैं क्या हूँ? क्यों जमादार साहिब तुम तो गुलाबो को जानते ही हो।

उस दिन.....तीजा के रोज स्टेशन से लौटते समय जब तुम शराब के नशे में चूर मेरे यहाँ आये थे और.....। खयाल है न? खैर, अभी न आयेगा। अभी आप भले आदमी हैं—शरीफ जादे और मैं वेश्या हूँ। फिर उस दिन तुम नशे में भी तो थे और आज होशहवास में हो। किसी दिन हाथ पकड़ कर घर से ले आऊँगी तब ‘हाँ’ कहोगे, अभी नहीं कह सकते.....।

...यूसुफ, यह तो तुम्हें पहले ही सोचना था कि गुलाबो बुरी है। वह अच्छी भली नाक वालों का हाथ थोड़े ही पकड़ने गई थी। मैं बुरी हूँ क्योंकि खरी कहती हूँ और सच बोलती हूँ। सब जानते हैं कि मैं धंधे वाली हूँ पर सच मानो मैं उनसे हजार गुना अच्छी हूँ जो मोटर कार पर काला चश्मा चढ़ा कर चलती हैं, पर हैं वेश्याओं से भी बत्तर। तुम अपनी बहिनों, बीबी को ही भूलते हो जो बुरे के अन्दर से इशारे करके मोल करती हैं और एक न एक बुद्ध फाँसने के चक्कर में रहती हैं। क्यों जानते नहीं, बड़े भोले हो। बस इसलिए वे भली हैं क्योंकि बुरका पहनती हैं, मोटर पर सुनहरी चश्मा लगाकर चल सकती हैं। सब लोग उनके

बारे में नहीं जानते। कुछ ज्यादा पैसों वाले लोग ही जानते हैं, जिनकी उन तक पहुँच है। मैं कमीनी, हरामजादी नीच और हरामखोर नहीं हूँ। नीच, कमीनी और हरामखोर तो तुम हो यूसुफ.....।

सब को उस ओर एकटक देखते और हँसते हुए बातें सुनते देखकर वह कहने लगी—यहाँ भीड़ क्यों लगाये हो आप लोग ? क्यों क्या औरत को कभी नहीं देखा ? गुलाब को नहीं देखा ? यह मेरा आदमी है, सात आठ साल से मुझे रखे हुये है। एक दिन धंधा करके आठ रुपया लाई थी और जब मैं गुजराती बाजार में सरदार की होटल कुछ काम से गई थी तब तक यह रुपये लेकर चम्पत हो गया था—भला आदमी। उस दिन फाखामस्ती रही और इसी की याद करते करते भूखी सो गई थी मैं। पर यह बे-दर्दी न आया और आज सपड़ा है तब से। अब मैं इसे बिलकुल न जाने दूँगी और घर ले जाकर ही चैन लूँगी यूसुफ, बुजदिल तो तू हमेशा से है पर नामर्द नहीं समझती थी मैं तुझे। नामर्द कब से हो गया जो औरत को छोड़े-छोड़े फिर रहा है.....?

अब तो मुझसे न रहा गया और मैं बोल ही पड़ा यूसुफ से, जो सिर झुकाये खड़ा था—अरे भाई क्यों नहीं जाते उसके साथ। शेर थोड़े ही है वह जो तुम्हें खा लेगी। क्यों मर्दानगी को चुनौती दिलवाते हो दोस्त ? मर्द के बच्चे हो, मर्द की तरह रहो। जब बाजुओं में ताकत न थी तो भिड़े ही क्यों थे.....? जाओ चले जाओ.....। और आप लोग भी अपने अपने घर जाइये। ठीक तो कहती है वह। क्यों तमाशा बनाये हुये हैं उसे ? सब का एक न एक दिन ऐसा मौका आता है। कोई इस दुनिया में दूध का धुला नहीं है। धोती के नीचे हम सब नंगे हैं। दूसरे का तमाशा देखते हो, जब लोग तुम्हारा तमाशा देखेंगे...तब अच्छा लगेगा...? और तब मेरी बात मानकर मेरा यार यूसुफ तो चला

गया गुलाबो के साथ तथा हम सबने भी अपने घर की राह ली ।

एक दिन इसी गुलाबो को सरदार होटल में खाना खाते देखकर मैंने नाक भौं सिकोड़ ली थी और खाना नहीं खाया था तथा सरदार से कहा था; कि यदि इस औरत को होटल में आने दोगे तो हम लोग नहीं आवेंगे । तुम्हारा धंधा चौपट हो जावेगा, पुलिस तुम्हारे पीछे पड़ जावेगी और तुम्हें किसी दिन यह जेल भिजवाकर ही दम लेगी । जानते नहीं हो चालू औरत है—आठ आने छाप । सारा शहर जानता है, कि गुलाबो क्या है ? और तुम इसे अपने यहाँ आने देते हो ? पर उस दिन के बाद जब भी मैं गुलाबो को सरदार होटल में देखता हूँ तो जरूर जाता हूँ और उसकी बातें गौर से सुनता हूँ—किसी संत के प्रवचन की तरह । भले ही मुझे खाना न खाना हो पर उसे वहाँ देखकर जरूर जाऊँगा और आठ बारह आने आमलेट अंडे में खर्च कर दूँगा । मैं उसकी दिलेरी और ईमानदारी का तब से बिलकुल कायल हूँ, सोचता हूँ—गुलाबो सच तो कहती है कि वह परदे के अन्दर रहने वाली रानी—महारानियों से बेहतर है जो धोखा देती हैं, शोषण करती हैं और दूसरों का दिल दुखाती हैं । वह तो खुला धंधा करती है । इस हाथ दे उस हाथ ले । यहाँ दिल से कोई संबंध नहीं है, सीधा शरीर से मतलब है—शरीर का सौदा है । मुझे लगा—गुलाबो मेरी बर्तन साफ करने वाली कामचोर, हरामखोर और बेईमान बरौनी से भी अच्छी है । वह लाख बार कहने पर तभी आती है जब हमारी मेंम साहिब बर्तन साफ कर चुकती हैं । और कहेगी बस यही—कि अरे बाई मुझे अच्छा थोड़े ही लगता है कि आप बर्तन साफ कर लेती हैं । क्या करें बाई, मेरी लड़की का लड़का बीमार है इससे देरी हो जाती है । अब कभी देरी न होवेगी । पर आये दिन रोज उसके यहाँ उसकी लड़की का लड़का बीमार होता है और वह हमेशा-हमेशा देरी से आती है

तथा खुद को और मुझको चार बातें सुनवाती है। इसी तरह मेरी जमादारिन की लड़की जमाने भर के नखरे करती है और बिलकुल कामचोर है। सोलह पैसे का काम नहीं करती पर सोलह आने, महीना खतम होने से सोलह दिन पहले से माँगना शुरू कर देती है और पहली तारीख के बाद पैसे के लिए एक दिन भी नहीं मानती।

फिर मैं सोचता हूँ—दुनिया ऐसी ही ऐसी तो है। हम किसका क्या कर सकते हैं? सुधार तो तब हो सकने की संभावना है जब बिगड़े हुए आदमियों का कोई हिसाब हो। यहाँ सब बुरे ही बुरे हैं और हिसाब के परे। फिर, 'जो घर खोजा अपना मुझसा बुरा न कोय.....।' पर आश्चर्य जरूर होता है इस भयंकर और सड़ी गली—मवाद बहने वाली दुनिया में, गुलाबो जैसी ईमानदार, दिलेर, प्यार पर मर मिटने वाली, सिर्फ मजदूरी और ईमानदारी की ही कमाई खाने वाली औरत को देखकर.....?

सौ का नोट

रोज नियमित रूप से अपनी छोटी बहिन के साथ प्रेमनगर से, सेठ मल्लूमल जैन ट्रस्ट कन्या विद्यालय गोरखपुर, कड़ी धूप और भर्यकर बरसात में भी टूटी चप्पल और सफेद खादी की धोती पहने दो मील पैदल जाते हुए किसी सीधी-साधी और सादगी से रहनेवाली युवती को देखें तो समझ जाइये—वही सौ रुपया माहवार की उस स्कूल की नयी शिक्षिका रेणू एम० ए० है। जब कहीं नौकरी का ठिकाना नहीं लगा तो अपना शहर छोड़ कर दो सौ मील दूर, इस जबलपुर नगरी में आई है। अकेली नहीं साथ में हैं उसकी पाँच नन्हीं-नन्हीं सी बहिनें, एक छोटा भाई और बूढ़ी माँ। कमाई करने वाली अकेली रेणू और खाने वाले उसको मिलाकर आठ आदमी। बड़ी दिलेर है। कभी किसी ने उसके चेहरे पर निराशा की एक हल्की सी झलक या उदासी की मलीन छाप भी नहीं देखी; रोना धोना तो दूर की बात है। उसे किसी से कोई शिकवा या गिला नहीं है। यह तो आदमी का भाग्य है, जो जिससे चाहे कुछ करा ले, किसी से कुछ भी सुनवा दे। न तो एक मिनट की देरी उसे स्कूल पहुँचने में होती है और न एक दिन की गैरहाजिरी ही। देरी से पहुँचेगी तो स्कूल का 'मैनेजमेंट' खबर ले डालेगा, हेड पाठिका जवाब तलब करेगी। वैसे ही नौकरी देकर इतना बहुत सा अहसान उस पर लोगों ने कर दिया है। गैरहाजिर कभी इसलिए नहीं हो सकती क्योंकि माँ की बीमारी में उसकी सारी 'कैज्युल लीव' खतम हो चुकी है। अब यदि और छुट्टी लेगी तो तनखाह कटेगी, फिर खाने के लाले पड़ जावेंगे। सौ रुपया तनखाह है

तो चौदह रुपया मकान किराया, बूढ़ी बीमार मां को दवाईयाँ, भाई और बहिनों को फीस, उनके कपड़े-लत्ते। बारह रुपये महीने का दूध और आठ आदमियों के भोजनों की व्यवस्था, इतने पर आने जाने वाले और भी जाने क्या ? कल्पना नहीं की जा सकती क्या खाते हैं वे लोग ? पर कभी किसी ने उनके यहाँ के छोटे से छोटे बच्चे को भी शिकायत करते नहीं सुना। जब कभी उसकी मां कहती—क्या मेरी तकदीर है ! जवान क्वारी बेटी की कमाई खाने को जिन्दा हूँ। इससे तो मौत बेहतर है। जवान लड़की कमा रही है और सात आदमी उसका सिर खाने को हैं। तो वह कह उठती—मां कैसा कहती हो ? मुझ जैसा भाग्यवान कौन है जिसके इतने छोटे छोटे भाई-बहिन और तुम जैसी स्नेहमयी मां हो ? मां उस आदमी के भाग्य का क्या कहना जिस की कमाई में एक नहीं, दो नहीं, सात आदमियों का भाग्य मिला है। फिर लोग तो दूसरों को खाना खिलाते हैं मुझे अपने भाई-बहिनों को—खून को खिलाना ही भारी हो गया है ?

महीने की बीस बाईस तारीख से ही लेने के देने पड़ जाते हैं घर में। किसी दिन दाल है तो चावल नहीं है। दूध है तो सब्जी नहीं और घी है तो आटा नहीं। और तब पहिली तारीख के दिन गिने जाना शुरू हो जाता है। आज महीने की २५ तारीख है। घर में भूँजी भाँग भी नहीं रही है। छोटी बहिन मुन्नी कभी-कभी बिस्कुट माँग बैठती है तो रेगू आँसुओं को पीकर तथा बनावटी हँसी चेहरे पर लाकर कहती है—मुन्नी पहिली तारीख तो आने दे, इस बार बिस्कुटों से ही भर दूँगी और जाने तुझे क्या क्या ला दूँगी कि तू भी कहेगी किसी रईस बहिन से पाला पड़ा था। तभी इन्द्रजीत बोल उठी—बहिन जी मुझे गुड़ी कि शादी में पानी पंगत को दो चार रुपये भी चाहिये। लड़की सयानी

हो गई है। उसे तो घर से निकालना ही है। यह बात सुनकर रेणू सब दुख-दर्द भूल कर जोर से हँस पड़ी और कहने लगी—हाँ भाई तुम्हारा काम बड़ा जरूरी है, सरकारी काम जो ठहरा ! फिर लड़की का मामला है। तुम जरूर ठाट से शादी इस माह की पहिली तारीख को कर डालो। रुपयों का इन्तजाम मैं कर लूँगी। रणजीत मुहल्ले के लड़कों को हाकी खेलता देख, हाकी के लिए जिद्द करता है। इस महीने में हाकी भी उसे लेनी जरूरी है। कितने बार प्रकाश के लिये सलवार-कुरता के लिए बोल चुकी हूँ, इस बार तो किमी भी तरह बनवा ही देना है, वह भी भंगमट मिटे। और मुझे, मुझे तो जाने क्या क्या लेना है पर कुछ नहीं लेना है। फिर चाहे जो भी हो माँ के लिए (१७।) के इंजेक्शन तो लेना ही पड़ेंगे वरना उसकी जिन्दगी खतरे में पड़ जावेगी और खाने पीने का सामान, जमादारिन, बरोनी की तनख्वाह, धोबिन और दूध वाली का पैसा कहाँ से क्या होगा यह सब कुछ ? खाने को चाहे कुछ न बचे और भले ही पूरे महीने उपवास करना पड़े पर मुन्नी को बिस्कुट, माँ की दवाई, रणजीत को हाकी और प्रकाश को सलवार-कुरता का इन्तजाम तो करना ही है। इसी तरह दिन, घंटे और मिनिट गिनगिन कर २६-२७-२८-२९ और ३० तारीख कटी। पहिली तारीख आने की खुशी में ये पाँच दिन पाँच घण्टे की तरह ही गुजर गये और आज पहिली तारीख है—खुशी का दिन—बड़ा भारी त्यौहार जवाहर-लाल का जन्म दिवस। आप नहीं जानते नौकरी पेशावालों की जिन्दगी में पहिली तारीख कितना महत्त्व रखती है। उतना ही महत्त्व जितना किसी को ईसा, बुद्ध और गांधी की जन्म-तिथि का या बड़े से बड़े त्यौहार का होता है। आखिर भई त्यौहारों और सालगिरहों में होता क्या है ? यही न कि अच्छा अच्छा खाया जाता है, खुशियाँ मनाई जाती हैं और क्या ? यही सब

पहिली तारीख को छोटे छोटे नौकरी पेशावालों के यहाँ देख लीजिए आप ।

रोज से जल्दी आज रेगू स्कूल पहुँची । शाम तक बाट देखी गई । पता चला ट्रस्ट के मन्त्री के लड़के की सालगिरह के कारण आज तनखाह नहीं मिलेगी । रेगू बड़ी निराश हुई । कैसे बच्चों को शान्त करेंगे, क्या खायेंगे यही सोचते सोचते वह घर लौटी । दो तारीख को कमेटी के किसी प्रमुख सदस्य के यहाँ पहिली-पहिली बार बच्चा पैदा हुआ था । तभी सब सदस्य वहाँ खाने-पीने में व्यस्त रहे और तनखाह का प्रबन्ध नहीं कर सके । क्या मजे की बात थी । एक तरफ कमेटी के वे सदस्य महोदय हलुआ, पूड़ी लोगों को खिला रहे थे, दूसरी ओर उनके स्कूल की, यूँ कह लीजिए उन्हीं की ही तीस दिन की नौकर के घर के आठ आदमी भूखे रहे, उस दिन-उन्हीं की मेहरबानी से । तीन तारीख को कोषाध्यक्ष की गैरहाजिरी के कारण वेतन नहीं मिल सका और आज चार तारीख है, नये महीने की । सहनशीलता और बेवसी की भी हद होती है । आज तो रेगू के धैर्य का बाँध भी टूटा जा रहा था । तभी चपरासी महोदय तनखाह लेकर आये । रेगू ने तनखाह लेने के लिए एक आने का 'रेवेन्यू स्टेम्प' अपनी मित्र से लिया । एक महीने की चाकरी, चार हफ्ते की मजदूरी और तीस दिन की गुलामी में उसे मिला-मौ का एक नोट । एक सौ का एक नोट और महीने भर का खर्च इतनी बहुत सी जरूरतें । माँ को दवाई, मुन्नी को बिस्कुट, बारह रुपया दूध वाले को, ६॥ रुपया की उधारी और जाने क्या क्या, कैसा क्या होगा ? पर फिर भी वह खुश है, बहुत खुश और जल्दी-जल्दी घर चली आ रही है । उसके घर पहुँचते ही बच्चे दौड़े और रेगू से लिपट कर चिल्लाये — बहिनजी आईं, जीजी आईं, तनखाह लाईं, बिस्कुट और मिठाई लाईं... ।

बच्चों को अलग करके रेणू ने कहा—हाँ भाई, तनखाह लाई है जीजी। तुम्हारे सबके लिए ही तो है। अलग बैठो, अभी कोई साधन मैं नहीं लाई। खाना खाकर सब बाजार चलेंगे और सारा बाजार खरीद लावेंगे, तुम सबको। ये रही तनखाह—सौ रुपया। तीस दिन की मजदूरी—सौ का एक नोट। और उसने किताब को पलटा पर निश्चित स्थान पर सौ का नोट न पाया। रेणू के प्राण से निकल गये। जैसे शरीर रक्तहीन और ठंडा पड़ गया हो। “सौ का नोट नहीं है। सौ का नोट गिर गया। तनखाह नहीं मिली आज। सौ रुपये का नोट गिर...गया...। बरौनी और जमादारिन की तनखाह, धोबिन और दूधवाली का पैसा, उधारी के साढ़े नौ रुपये, माँ की दवाई और मेरी नन्हें सी प्यारी बहिन मुन्नी को बिस्कुट अब क्या होगा, कैसे आयेगा यह सब ? और ऐसा कहते-कहते रेणू धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी। वह बेहोश हो गई और उसे ठंडा पसीना आ गया। पहिली बार ही इस जिन्दगी में रेणू के घर के लोगों ने उसकी आँखों में आँसू देखे थे। घर के सब लोग घबड़ा गये उसकी यह हालत देखकर और छोटी-छोटी सी उसकी बहिन सिसक-सिसक कर रोने लगीं। गरीब घर में हर बीमारी के इलाज के लिये ठंडे पानी के अलावा और क्या मिल सकता है ? बस ठंडे पानी से रेणू का मुँह उसकी बीमार माँ ने रोते-रोते धोया और सिर पर गीली पट्टी रख दी तब कहीं रेणू की बेहोशी दूर हुई। होश में आते ही वह स्कूल तक दौड़ गई। सुई की तरह ढूँढ़ा पर सौ का नोट नहीं मिला।

एक ही घंटे में उन बेचारों की दुनिया कितनी बदल गई। चार बजे उनके दिलों में उमंगों की रंगीनियाँ थीं, हसरतों की हलचल थी, कहकहों के फूल थे और अब कफस था, बेबसी थी और थी लम्बी निराशा। आज रेणू के घर में सबने हरतालिका व्रत रखा। सबकी रोते-रोते रात गुजरी और वहाँ किशनचन्दर ने

सड़क पर उस सौ के नोट को पाकर खूब शराब पी और पिलाई तथा विमलाजान के मुँह से अपनी पसन्दगी का—‘पतली कमर है तिरछी नजर है’ गाना सुना। पैसे जी भर कर लुटाये और घर आकर बेहोशी में अपनी कई रोज की भूखी गरीब बीबी और नादान बच्चों को खूब पीटा। तथा दूसरे दिन बचे हुये दस-दस के तीन नोट रेणू को दिखाते हुये—‘जमाना दस-दस के दस नोट का’—गीत गाकर आवाजें कसीं।

जाने कौन सा पाप किया था वेचारी रेणू ने, कैसा भाग्य था उसका ? लगता था—भाग्य ऐसा-वैसा कुछ न था। फिर वहाँ अकेला उसका भाग्य थोड़े ही था, सात गरीब—भूखे इन्सानों की तकदीरें और भी थीं। क्या सभी की किस्मत खराब थी ? नहीं, वह तो तपस्वनी थी साधक, जो किस्मत से जूझ रही थी—शेरनी की तरह।

उस दिन से रोज, स्कूल जाते समय रेणू सिर नीचा किये आते-जाते में अपने सौ के नोट को ढूँढ़ती रहती है—शायद कभी मिल जावे वह ?

— — —

अब आप ही बतलाइये मैं क्या करूँ

मेरे घर में मेरी मां, भाभी, चाची और मेरी बहिनों के अलावा भी एक स्त्री है। घर के लोगों ने मुझे बताया था कि वह मेरी पत्नी है। आप लोग इस चीज पर हँसेंगे कि यह कैसी बात है? बात बिल्कुल ठीक है। मेरी शादी भी आज से करीब १५० साल पहिले हुई थी जब कि मैं केवल दस साल का था। जिस तरह माँ अपने बच्चे को यह चीज महसूस कराती है, विश्वास दिलाती है कि अमुक आदमी ही उसका पिता है और वह बच्चा विश्वास करके उस आदमी को अपना पिता कहना शुरू कर देता है। वही हालत मेरी भी है। मुझे भी विश्वास दिलाया गया है, महसूस कराया गया है कि वह स्त्री ही मेरी पत्नी है। भगवान जाने यह बात कहाँ तक सत्य है? मुझे तो लगता है जैसे मेरी मखौल उड़ाई गई है। सचमुच उस उम्र में मुझे यह समझ ही न पड़ता था कि शादी क्या चीज होती है और न मैं दुनियादारी की बातों को जानता ही था। तभी मुझे ऐसा कुछ लगता है।

मेरी मां चाहती थी, मेरे घर के लोग, संबंधी चाहते थे मेरी शादी हो, बस मैंने शादी कर ली, यही समझकर कि शादी भी आदमी की होती है चलो मेरी भी हो गई। एक झंझट मिटी। कोई विशेष बात शादी में मुझे न दिखती थी और न लगी भी। जब कभी लगी भी तो मैंने समझ लिया-मेरे घर के लोगों की शादी हो गई मेरी मां की शादी...मेरी शादी हो गई।

यूँ ही आप चार लोग कहते हैं वे खुबसूरत हैं। हाँ, रंग, तो जरूर उनका गोरा है। छरहरा सा बदन, बड़ी बड़ी आँखें और काफी लंबे से बाल। बस लोगों के कहने से उन्हें अपने हुस्न का नाज

है और मुझे भी करना पड़ता है क्योंकि वे मेरी धर्मपत्नी कही जाती हैं ।

कहने को मैं चार-छः, बच्चों का वाप भी हो चुका हूँ क्योंकि हर साल जनती हैं न वे एक बच्चा, पर जिन्दा एक चिड़िया का बच्चा भी नहीं है । यदि सब जिन्दा होते तो कसम आपकी एक खासी वाली-बाल टीम बन गई होती मेरे घर पर ।

तो साहब, जिसे मेरे घर के लोग मेरी पत्नी कहते हैं आपकी कृपा से काफी मूर्ख हैं वे । अकल-बकल नाम की चीज उनको छूकर भी नहीं निकली या यूँ कह लीजिए, जिस दिन अकल बँट रही थी उस दिन वे अपनी औलाद के साथ शिकारपुर के बाजार में तफरियन चली गई थीं ।

याने आप यूँ समझ लीजिये उन्होंने कभी यह महसूस ही नहीं होने दिया कि अकल भी कोई चीज होती है और यदि होती है तो उनमें भी है । मेरी हर बात को गलत समझना और मजा तो यह कि गलत समझना ही बस नहीं बल्कि दूसरों को गलत बतला देना तथा मुझे भी अपनी श्रेणी में शामिल करा देना ही उनका रोजमर्रे का धंधा हो गया है । आप जरा सोचिये तो, कि पुराने विचार वाले हिन्दू कुटुम्ब में यदि भाग्य से ऐसी पत्नी मिल जाये तो फिर उस बंचारे पति का तो भगवान ही मालिक है । रोज घर में झगड़ा, मतभेद और फिर घर निकाले पर नौबत । यही हालत मुझ गरीब इन्सान की भी है । मैं कहूँ उन्हीं के हित की पर वह बन जाय खतरनाक मुझे भी । उनका प्रेम भी बड़ा खतरनाक, उन्हें यदि प्रेम जतलाया जाय तो वह खतरनाक और यदि प्रेम वे जतलावें तो वह भी खतरे से खाली नहीं । इसलिये आप से सच कहूँ मैंने दोनों काम न करने की कसम ही खा ली है और तभी वाईसकोप के उस गाने को—तकदीर में यही था साजन मेरे न रो—

कह-सुनकर अपने दिलको बहला लिया करता हूँ। दिलके बहलाने को फिलहाल यह ख्याल भी अच्छा है...।

पढ़ी तो वे हैं काफी बातें जो उन्हें नहीं भी पढ़नी चाहिये थीं पर काम का बिल्कुल नहीं पढ़ीं। वही अपनी रामायण बगैरह पढ़ लेती हैं। खत-वत लिखने का अभ्यास भी है उन्हें। कभी-कभी जासूसी उपन्यास भी पढ़ते देखा है। मैंने उनको। बस इसी का उनको बड़ा नाज है और वे अपने को किसी ग्रेजुएट से भी कम नहीं समझती हैं। हाँ! वे चिट्ठी-विट्ठी लिखती जरूर हैं पर मुझे कभी भी उनके पत्र पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। आप समझ लीजिये कि मैं कभी भी दिल भर के न तो यह महसूस कर सका हूँ और न कह ही सका हूँ कि मेरी भी पत्नी है। वैसे मुझे पत्नी की पूर्णरूपेण परिभाषा भी नहीं मालूम, हो सकता है मैं ही गलती पर होऊँ, यही पतिव्रत धर्म हो जो मेरी पत्नी जानती है।

मैं तो समझता हूँ वे पत्नी नहीं बल्कि शेर हैं और मेरे घर में शेर बँधा हुआ है। यही बात समझकर मैं आपसे कहता हूँ, कुछ डरता सा भी हूँ उनसे। जब कभी लोग-वाग मुझ गरीब की गरीबी पर तरस खाकर उनके सामने कह देते हैं कि मुझे काफी चुस्तचालाक और बेवकूफ स्त्री मिली है और मुझे दूसरी शादी कर लेनी चाहिये, किसी समझदार पढ़ी लिखी स्त्री से, जो सब्जे माने में औरत हो, क्योंकि मैं आपसे सच कहता हूँ मुझे उनके औरत होने में भी संदेह ही है। तब तो वे तपाक से बोल पड़ती हैं-मुझमें क्या कमी है? पूरे पाँच हाथ की औरत हूँ, पढ़ी लिखी खुबसूरत। और फिर ज्यादा पढ़ी लिखी औरत को पाकर क्या उससे नौकरी करानी है? देखें कैसे दूसरी शादी होती है? मैं जहर खा लूँगी, कुएँ में गिर पड़ूँगी और तब तुम्हें जेल भिजवाकर ही चैन लूँगी। याने उन्होंने काफी आतंक जमा के रखा है घर में। मैंने उनकी हरकतों से बाज आकर उन्हें कई बार मारने-पीटने का भी सोचा पर साहस नहीं हुआ। आप

ही सोचिये एक पढ़े-लिखे आदमी को यह कहाँ शोभा देता है ? फिर वे ठहरीं शेर और मैं आदमी, कहाँ संभव है यह भी ? बस इसी चीज को सोचकर उनकी बेवकूफियों के बाबजूद भी मैं चुप रहता हूँ अपनी तकदीर को कोसता हुआ । और फिर चारा ही क्या है ? बिलकुल बेबस हूँ मैं !

मैंने कभी कहा—चलिये हुआर सिनेमा देखने चलें ? तभी उन्होंने लाजबाब करते हुए मुझसे कहा—मैं सिनेमा नहीं देखती, मुझे तुम्हारे साथ सिनेमा नहीं देखना । तुम तो सिनेमा अपनी उन्हीं कालेज की दोस्तों को दिखाओ । यदि मैं कभी कोई चीज लाया, मसलन साड़ी-वाड़ी, तो वह उनको बिलकुल पसन्द न आयेगी । वे उसे स्वीकार न करेंगी क्योंकि मैं उसे लाया हूँ । कोई चीज न लाऊँ तो मुसीबत और लाता हूँ तो भी खैर नहीं । न मुझे कभी उनके टेस्ट का पता चला और न स्वभाव का ही । मुझे तो लगता है—मैंने ये डिप्रियाँ उधार लेली हैं; खरीद ली हैं; जब मैं अपनी पत्नी के दिल और दिमाग का अंदाजा ही न लगा सका, उनकी गहराइयों तक ही न पैठ सका ।

इन सब बातों के बतलाने के पहिले मैं यह बतलाना तो भूल ही गया कि मैं दुर्भाग्य से ब्राह्मण हूँ और मेरी पत्नी 'टिपीकल' ब्राह्मण स्त्री हैं । मैं सच कहूँ, मुझे तो तरस आता है अपने पर । तभी मेरी भगवान से अर्ज है कि वह किसी को ब्राह्मण न बनावे और यदि बनावे भी तो कम से कम उसे ब्राह्मण पत्नी न मिले । क्योंकि ईश्वर की कृपा से ब्राह्मण लड़कियाँ काफ़ी मूर्ख होती हैं । डीलडौल भी वही हम आपसे कई गुना ज्यादा । दिमाग का अनुपात भी उनकी मुट्ठी और शरीर की ही तरह । यदि ईश्वर ने कभी मौका दिया, शादी करने का, हाँ-हाँ साहब शादी दूसरी शादी, क्योंकि मुझे हसरत है दूसरी शादी करने की तो ब्राह्मण को छोड़कर अन्य किसी जाति में ही शादी करूँगा । आप इतनी

स्वतन्त्रता तो देंगे ही मुझे क्योंकि मुझमें भी अग्रमान हैं, दिल है, जजवात हैं, पति बनने का शौक है और सच्चे अर्थ में पत्नी पाने की हसरत है—सामान्य पति-पत्नी, जैसे साधारण सुखी घर को चाहिए, तो मुझे दूसरी शादी तो करनी ही पड़ेगी और आप दया करके उसकी अनुमति भी दे देंगे ।

इस उम्र में हर आदमी को एक खास सहानुभूति की आवश्यकता पड़ती है जो उसे घर की स्त्री से ही मिल सकती है, अन्यत्र कहीं नहीं । वह मुझे नहीं मिली । क्योंकि मैंने अपनी पत्नी नाम की औरत का व्योरा तो आपको बतला ही दिया है । बस उनका नाम भर पत्नी है । मैंने यहाँ-वहाँ भी ताका है । मेरे जीवन में एक नहीं अनेक स्त्रियाँ आई हैं । वे बहार बन के आईं और पतझड़ बन के चली गईं । मैंने दोस्ती की, प्यार लिया और दिया भी पर मुझे वह चीज नहीं मिली जिसकी कि एक जवान आदमी को, एक पति को या मुझे जरूरत पड़ती है । मैं कहीं जाऊँ, कभी आऊँ, न भी आऊँ पर मेरी पत्नी को मेरी परवाह नहीं । जीता ही रहूँ अपने अग्रमानों को मसोस कर—कैसे भी, उनका पति कहलाता रहूँ—यही बस है उनको । मेरे नाम की सौभाग्य सील उनके सिर पर लगी रहे—इसी में संतुष्ट हैं वे । मेरा कैसा भी हाल हो, मैं मरूँ या जिन्दा रहूँ, उन्हें इसकी चिन्ता या परवाह नहीं है । उन्होंने कभी यह नहीं समझा और न पूँछा भी कि मुझे भी कुछ कहना है, मुझे भी कुछ होता है या मैं भी इन्सान हूँ... ?

संभवतः वे समझती थीं मुझे कुछ नहीं होता-वोता है, मुझे कुछ नहीं कहना । मेरे पास है ही क्या कहने को ? न उन्होंने कभी मेरे दुख में सहानुभूति ही दिखलाई और न कभी मेरे सुख में हाथ ही बटाया—मेरा । अब आपही बतलाइये मैं कैसे महसूस कर लूँ कि वे मेरी पत्नी हैं... ?

तो मेरे दोस्त, यह मेरे दिल का राज था—प्राईवेसी, जिसे

मैं छिपाये था—शताब्दियों से। आज उसे खोल ही दिया आपके सामने, आपको अपना समझाकर। आप लोग शायद इस पर हँसें—हँसते रहें, मुझे इसकी कतई परवाह नहीं। आपके हँसने के बावजूद भी मेरी उस परवरदिगार से अर्ज है कि आपको ऐसी पत्नी नाम की औरत से पाला न पड़े। वरना मेरी तो बहुत गई थोड़ी रही, जैसे तैसे कट गई या कट जावेगी, आपका जाने क्या हाल होगा ?

तो भाई साहब इन्हीं सब बातों को सोच समझकर मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं भी एक बार फिर से दूल्हा बन ही जाऊँ। लोग-वाग कहेंगे—मैं भी क्या अहमक हूँ—बुढ़ापे में दूल्हा बनने की सूझी है। जब एक औरत घर में बैठी है तो दूसरी शादी क्यों ? पर आप ही बतलाइये मैं कहाँ तक अरमानों को दबोचे रहूँ ? हाँ, दूल्हा मैं इस तरह का न बनूँगा जिसे आपके गाँव में दूल्हा कहा जाता है जो सचमुच में रहता है मदारी ही पर कहते हैं उसे दूल्हा—राजा—बादशाह आदि आदि। वैसा दूल्हा नाम का जानवर तो मैं बन ही चुका हूँ, आज से करीब डेढ़ सौ साल पहिले जबकि मैं केवल दस साल का था।

अब आगे का फसाना सुनिये। तो मेरे कालेज के जीवन में एक खुबसूरत सी बदनसीब लड़की टकराई मुझसे। नहीं मालूम क्या दिखा मुझमें उसको ? उसने अपने सारे साहस को बटोर कर अपना प्यार पत्रों में रखकर भेजा। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और अपने पर कुछ नाज भी आया कि मुझे भी कोई स्त्री प्यार करती है। बात आगे बढ़ी, शादी का पैगाम आया। मुझे बड़ा सन्तोष हुआ पर मैंने यह जरूरी समझा कि इनको सारी की सारी चीज समझा तो दी जावे ताकि आगे पीछे की बात न रह जावे। मैंने बतलाना चाहा—कि मेरी शादी तो हो चुकी पर मुझे दुर्भाग्यवश पत्नी नहीं मिली जिसकी कि मुझे चाह है

और मैं खोज में हूँ। जैसा कि औरतों का अविश्वासी स्वभाव होता है वे भी मुझ पर अविश्वास कर बैठीं।

‘...आपने मुझे धोखा दिया। आप विवाहित नहीं हैं, आप मुझसे शादी नहीं करना चाहते हैं जिसका कि यह बहाना है और ऐसा कहकर आप मुझे टाल रहे हैं...।’

मैंने काफी आरजू मिन्नतें कीं और इन्हें जतलाने की कोशिश की कि भई मैं शादी तो कर रहा हूँ आपसे पर सारा किस्सा तो बतला दूँ... ?

पर वे नहीं मानीं आखिर। काश, मुझमें इतनी ताकत होती कि कलेजा फाड़कर उन्हें बतला देता कि क्या स्थान है मेरे हृदय में उनका ?

आखिर उनकी आवाज वुलन्द हो गई। एक दिन अपने ही सामने मैं लुटता रहा और वे दूसरे की सम्पत्ति होकर चली गईं। मैं खुद कुसूरवार था कि जब मेरी शादी हो चुकी थी तो मुझे प्रेम करने का कोई अधिकार न था ? वाह रे न्याय ! मैं प्यार नहीं कर सकता क्योंकि मेरा विवाह हो चुका है ? मेरे घर में एक शेर बँधा है, मेरी किस्मत पत्थर पर लिख दी गई है। बस मैं इसी से संतोष कर लूँ। आगे बोलने-कहने का मुझे कोई अधिकार नहीं। यदि कहूँगा तो जबान काट ली जावेगी। बड़ी विचित्र बात है। पर मैं कैसे समझाऊँ अपने टूटे दिल को ?

मैं अपने दिल को क्या करूँ ? कोई चीज अच्छी लगती है तो उसे अच्छी न कहूँ ? क्या शादी हो जाने से कोई चीज अच्छी न लगे ? ऐसी स्थिति होने से मुझमें जो अतृप्ति रह गई है, मेरे दिल की गहराइयों में जो प्यार छलांगें मार रहा है और किसी को अपने में डुबा लेना चाहता है—उसको क्या करूँ

मैं ? मेरा स्वभाव तो बड़ा विचित्र है और अजीब भी । कोई चीज मुझे अच्छी लगती है मैं उसे 'अच्छी' कहता हूँ—देखना हूँ, भले ही वह मुझे न देखे—मैं उसे 'अच्छा' न लगूँ ? मेरे जीवन में कई ऐसे मौके आये जब मैंने एक भूलक को देखा । अब बस उसी की याद मेरी इस छोटी सी जिन्दगी को गुजार देने के लिये काफी है । जिस क्षण प्यार किया उसी क्षण यदि वह समाप्त भी हो गया तो उस छोटे से क्षण की मधुर स्मृति ही मेरी कई जिन्दगियों की जिन्दगी बन सकती है ।

तो मेरे आका, मैंने अरमानों की एक नई बस्ती बनाने की शुरुआत किया है । इस बार मैं टकराया हूँ गोकि मैं कई बार ठोकर खा चुका हूँ । अब और ताकत नहीं रही वरना कलेजा चूरचूर हो जावेगा । मेरे 'उनको' तो यह चीज मालूम है कि मेरे घर पर एक स्त्री है जो स्त्री नहीं हैं—पत्नी ही नहीं है और सब कुछ है । अब तो वे मेरी आँखों में बस गई हैं तभी मुझे रात-दिन नींद ही नहीं आती । मैंने भी उन्हें अपनी पलकों में छुपा लिया है । मेरी बड़ी खराब हालत है । मुझे समझ ही नहीं पड़ता मैं क्या करूँ ? उनके वगैरे मुझे अपनी जिन्दगी एक गुनाह बन गई है । रंग तो उनका वही है...। वही सांवला सलौना जो मेरा है और मुझे बड़ा पसंद हैं । वे दो चोटियाँ, शराबी मस्तानी आँखें, हाथी जैसी रुमरुम चाल और उनके वे नाजो-अंदाज मेरी जिन्दगी का फसाना बने हुए हैं । वे नाराज हो जाती हैं, मुझे प्यार आ जाता है । कभी मैं रुठ जाता हूँ बस वे गरम गरम आँसू गिराकर सब कुछ बतला देती हैं । मैं हँस पड़ता हूँ और उन्हें आगोश में लेकर सब कुछ भूल जाता हूँ । मेरे दिल की बड़ी खराब हालत है । जला भुना पड़ा है न और तभी उस राख की सुफेदी मेरे चेहरे पर भी आपको साफ साफ दिखेगी । बस यूँ समझ लीजिये कि—

‘उनके देखे से जो आ जाती है चेहरे पर रौनक’

वे समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है...।

अब मुझे इसी बात का फिर टपके जैसा डर लगा है कि
(.....) कहीं...! भगवान मेरे अरमानों की इस दुनिया को
आबाद रखना और मेरे ‘उनको’ यह बतलाये रहना कि मेरी क्या
हालत है...!

क्या यही जिन्दगी है

हाँ, मैं ही हूँ। पेन्टर सुदेश मुझे ही लोग पेन्टर के नाम से बदनाम किए हुए हैं। दूर बहुत दूर मेरे बतन से सवा-सैंकड़ा मील दूर जबलपुर नगरी, उसमें भी दूर गोरखपुर मुहल्ला और सबसे दूर प्रेमनगर, वहीं महानद के आगे, मदनमहल स्टेशन के सामने लकड़ी के टालों से घिरे एक बरसाती तालाब के किनारे हमारा आशियाना है। बिलकुल सुनसान और नीरस जगह, जहाँ न चिरई चोंकती है और न बाघ भोंकता है। सिर्फ मदनमहल स्टेशन से रात में बम्बई-कलकत्ता मेल और काशी एक्सप्रेस का नया इंजन ही भों भों की आवाज से उस बेदर्द नीरवता को चीरता हुआ चला जाता है। कभी-कभी हाऊबाग स्टेशन को जाती हुई छोटी-लाइन की गाड़ी का चीखना-चिल्लाना भी हम सुन लेते हैं। पूरी रात जबलपुर-नागपुर के बीच आने-जाने वाले ठेले और मोटरें, उस बेचारी, सामने की गरीब फटी-टूटी सड़क को राहत नहीं लेने देते। मेरे घर के सामने के जलाशय में सैंकड़ों-हजारों बरसाती कीड़ों की किकट की आवाज और टालों से चिरती-कटती लकड़ी की सर सर सी की ध्वनि मुझे रात में एक क्षण भी आराम नहीं लेने देती और तभी मेरे मन में सैंकड़ों-लाखों बातें आती हैं उनमें से एक यह भी है कि क्या यही जिन्दगी है? इसी के लिए जिया जाता है और यदि इसी मरी हुई मौत का ही नाम जिन्दगी है तो बाज आये इस जिन्दगी नाम की मौत से। इससे तो वह सड़ी गली मौत ही बेहतर है। सुनसान में बना मेरा सुनसान घर मुझे बिलकुल नापसन्द है। मुझे तो हर समय चहल पहल 'क्राउडस', आदमी-औरतें और उनके बीच रहना पसन्द है। मैं सुनसान को कभी भी

दसन्द नहीं कर सकता। लगता है—वह खाने को दौड़ रहा है मुझे। जैसे चहल-पहल ही जिन्दगी है और सुनसान ही मोत है। सच भी है, बेजानदार चीज के बीच में जानदार आदमी की जान कब तक जी सकती है? मैं तो जिन्दा रह सकता हूँ वहाँ, जहाँ रोमान्स हो जिन्दगी में 'थ्रिल' हो। यदि बेजानदार चीज से मुहब्बत की जा सकती होती तो उस दिन हसीना ने जरूर ही अपने मरहूम शौहर अहमद का शव मसाले के बीच रखकर उससे अपना काम चला लिया होता। और क्यों न उर्मिला ने अपने स्वर्गीय पिता को अलमारी में बन्द कर उससे मौके बेमौके स्नेह का चुम्बन और प्यार की थपथपाहट पाई? भाई साहब यह जिन्दगी ही का एक साँस का जहूड़ा है, आँखों का लिहाज है जिससे आपके छोटे-मोटे काम चलते चले जाते हैं, वरना कौन किसकी यहां परवाह करता है और करे भी तो क्यों...? बस ये आँखें बंद हुईं और इस एक साँस में गड़बड़ी हुई कि सब काम गड़बड़ हो गया।

यदि आप प्रकृति प्रेमी हैं और आपको बेजानदार चीजों से मुहब्बत है तो बेखटके मेरे घर आ धमकिए, कभी भी। सड़क पर एक पेड़ की डाली से टँगा मेरे नाम का साइन बोर्ड आपको मेरे इस मशहूर और मारुफ घर का पता देगा।

वहीं मेरे घर के करीब एक और अशियाना है। वह है एक लकड़ी चीरने वाले मजदूर का। उस घर में वह मजदूर, उसकी अंधी-बूढ़ी माँ और उसकी बीबी दुलारी, कुल मिलाकर तीन आदमी हैं। करीब तीन साल पहिले उस घर के राजा का दाहिना हाथ मशीन से कट गया है। बस तभी से खाने पीने का सामान उस घर की रानी दुलारी जुटाती है। लकड़ी, कोयला ढोना और आरे में लकड़ी चीरना ही उसकी आमदनी का जरिया है। पर उसी में वह, उसका लँगड़ा-लूला घरवाला हीरालाल

और बूढ़ी अंधी सास बेहद खुश है। किसी ने कोई भगड़ा-फिसाद, असन्तोष उस घर में कभी नहीं देखा सुना। मर्द बनकर औरत दुलारी अपने मर्द का पोषण करती है और सदैव हँसती खेलती रहती है, जैसे उसे कोई तकलीफ या दुख नहीं है। यूँ कह लीजिए अभी बच्ची है कुछ समझती ही नहीं...। पढ़ी लिखी जरूर नहीं है पर मैं तो कहूँगा—वह बड़ी दार्शनिक है, जो समझती है—हँसना ही जिन्दगी है और रोना ही मौत है। इस उबड़-खाबड़ और बेकाम की जिन्दगी को वह हँस-खेलकर ही काट देना चाहती है क्योंकि जिन्दगी कोई बड़ी महत्त्वपूर्ण चीज थोड़े ही है जिसके लिए बड़ी तैयारी या कसरत करने की आवश्यकता है। वह बिल्कुल छोटी सी और मामूली सी चीज है। उसे वैसा ही समझकर रहना चाहिए तभी आप सुखी हो सकते हैं। वरना बस मौत के पहिले मर गये और खून के घूँट पीकर भी आप जिन्दा रहना चाहेंगे तो भी आपको जीने नहीं दिया जावेगा और आपका जीना दूभर हो जावेगा। कभी भी यदि उसके आने के पहिले उसका घरवाला चूल्हे में लकड़ी डालकर जला लेता तो वह भी जल उठती और दुखी होकर नाराजी से कहती—क्यों किया उन्होंने वह सब..... ? फिर वह किस मर्ज की दवा है..... ? उसके फर्ज से उसे विमुख करना—कहाँ का प्यार है..... ?

ठीक उलटा मेरे घर में है। यदि दफ्तर से पहिले आ जाने पर मैंने 'स्टोव' जलाकर चाय नहीं बनाई तो मेरी खैर नहीं फिर। मेंम साहब मेरी हुलिया टाईट कर देंगी। कहेंगी—मैं बिल्कुल बेकाम का आदमी हूँ, जब मुझसे इतना भी नहीं होता और मैं अपनी बीबी के काम में इतना भी हाथ नहीं बटा सकता ? हम लोगों की शादी हुए कुल तीन साल ही तो हुए हैं पर लगता है जैसे तीन शताब्दियाँ गुजर गईं और तभी जिन्दगी

बिल्कुल बदसूरत और सड़ी गली चीज बनकर हमारे सामने रह गई है। क्योंकि जिन्दगी जब टाईम-टेबिल बन जाती है तो उसमें कुछ नहीं रह जाता, वह हो जाती है बिल्कुल आकर्षण-विहीन और 'चार्मलेस'। उसमें हर समय 'ऐक्शन' चाहिए तभी कुछ रौनक रहती है और जिन्दगी जीने के लायक दिखती है।

मेरा ६ बजे सुबह भीषण ठंड और भयंकर बरसात में उठ कर ६॥ बजे भूखे-प्यासे दफतर जाना। दो बजे लौटकर और तीन बजे फिर वापिस जाकर ४॥ बजे तथा कभी-कभी अपने अपढ़ अफसर की कृपा से (जैसा कि प्रायः हमेशा ही होता है) ६ बजे छुट्टी पा सकना। ५ घंटे में ५० बार अपमानित होकर ५०० खरी-खोटी अपने जानवर अफसर से सुनना जो कि सचमुच में पशु है पर अपने आपको आदमी ही नहीं—भला आदमी समझकर हमसे जानवरों और बेजानदार चीजों जैसा व्यवहार करता है। फिर जब सुबह ६ बजे से शाम के ६ बजे तक (१३०) की यही गुलामी में करना रहूँगा तो स्वाभाविक ही है कि मेरे घर के लोगों को यह आभास होगा कि मुझे घर में और उनमें कतई दिल-चस्पी नहीं है। इस अकेली रोटी ही दिलानेवाली नौकरी के अलावा पढ़ाई लिखाई का काम न हो सकना तो क्षम्य है पर बीबी-बच्चों की बीमारी में उनकी देखभाल कर सकने को समय न पाना (क्योंकि मेरा अफसर मेरे घर में कोई आदमी की मौत की बात जानकर भी छुट्टी नहीं देता) और न दवा लाने को पैसे ही जुटा सकता—कहाँ की जिन्दगी है और क्या इस ही जिन्दगी कहते हैं ... ?

पेपर में काटून देखकर, नौकरी से निराश होकर, नौकरी करने वाली औरत से शादी कर लेना तो आसान है पर निभा जाना बड़ा मुश्किल काम है। मुझे अपनी बरौनी के उस दिन के प्रवचन

बार-बार याद आते हैं कि पढ़ी-लिखी लड़की से शादी करना याने घर पर एक सफेद हाथी बांध लेना है और फिर शादी कर लेना तो आसान है पर निभा जाना बड़ी कठिन बात है जो बिरले ही घर पाते हैं।

रात को शहर से घूमकर लौटते समय जलाशय में राजकपूर की तरह पतनून मोड़ कर निकलना और कीचड़ में सांप-बिच्छुओं ने सामना करने पर भी 'तुलसीदास' और 'बिल्वमङ्गल' की उपाधियाँ पाना तथा घर का दरवाजा खुलने पर दस-पच्चीस तली-कटी होना या फिर घंटे दो घंटे बात ही नहीं होना, क्या इसी का नाम जिन्दगी है...?

दोनों घरों में अन्तर कोई विशेष नहीं था कुछ था, तो बस यही था—कि उस लूले अधनंगे हीरालाल के घर में कभी कोई लड़ाई-भगड़ा या अशान्ति देखी सुनी नहीं, गई। सबके चेहरों पर लोगों को एक अजीब शान्ति और संतोष देखने को मिलता और मेरे यहाँ आये दिन रोज लड़ाई-भगड़े, जमाने भर की शिकायतें, आज यह चीज नहीं है वह नहीं है, के अलावा कभी कुछ और नहीं सुन पड़ता।

जब कभी मैं हीरालाल के घर के सामने से निकलता हूँ तो वह राम-राम कहकर मेरा अभिवादन करता है। तभी उसकी बीबी 'हूँ' ढाँककर, घूँघट की आड़ से कहती—अच्छे आदमी है ये बाबूजी और बड़ी अच्छी हैं इनकी बाई, गोरी-गोरी खुबसूरत और खूब पढ़ी-लिखी। बड़े सुखी हैं दोनों बाई और बाबूजी। रामलाल भी 'हाँ' कहकर अपनी सहमति देता। तभी मैं गड़ सा जाता और चेचता क्या खाक हैं बाबूजी अच्छे और क्या हम लोगों की जिन्दगी है....., क्या यही जिन्दगी है.....? काश मैं हीरालाल होता—लूला-लंगड़ा, मजदूर और होती दुलारी जैसी सुमति वाली ही बीबी। तभी यह घर आशियाना कहला सकता। काहे को मैंने

इतना पढ़ा-लिखा था, वकालत पास की थी और पढ़ाई में इतना समय और पैसा बरबाद किया था। सैकड़ों-हजारों डिग्रियाँ और हजारों लाखों गोरी-गोरी बीबियाँ, इन दोनों की खुशहाल जिन्दगी पर, इन पर, बारी जा सकती हैं.....?

और तभी, जब कभी मैं रात को कान लगाकर लकड़ी की भोपड़ी में बन्द मुहब्बत के इन परिन्दों की सुनहली और हँसीन जिन्दगी की प्यार भरी बातें सुनता इसलिए कि कुछ तो मालूम हो जिन्दगी क्या है, सुख है आखिर किस बला का नाम...? और कभी शहर से जब मैं पूजा-पाठ के लिए फूल खरीद कर लाता तो वहाँ से निकलते समय, मौका देखकर, कुछ फूल उस दरवाजे पर रखकर श्रद्धा से अपना सिर झुका लेता... ..।

— — —

विमल

‘कैसी बहकी-बहकी बातें करते हैं समीर बाबू आप ‘रंगून स्टूडेंट्स कल्चरल कन्वेंशन’ में नहीं जावेंगे, क्योंकि रुपये पास में नहीं है। मेरे रुपये आपके रुपये नहीं है—नही हो सकते। अपने ही रुपये चाहिए। जाने कब समझ सकोगे मुझे या कभी समझोगे भी कि नहीं कुछ समझ ही नहीं पड़ता ? जैसे मुझे कुछ खुशी ही नहीं हो रही है तुम्हारे वहाँ जाने में ? मेरा जैसे कोई स्वार्थ ही न हो उसमें, क्यों समीर बाबू ? अरे निर्मोही तुम सभापति हो रहे हो—मेरे तुम याने मैं—इसका कुछ मतलब ही नहीं है ? किसको मिलता है इतना ऐसा सम्मान ? जब तुम सभापति के पद पर आसीन होगे, तब...तब, तब जाने क्या होगा मेरा हाल ? मैं क्या जिन्दा रह सकूँगी ? बोलो न समीर बाबू तुम तो कुछ बोलते ही नहीं ? रुपया सम्बन्धी बात से इतनी निराशा, ऐसा भी क्या ? उठो अब जल्दी इस समय उतने रुपये पास नहीं हैं, यह लो मिलिटरी के एक डाकू ने मुझे हार भेंट किया था, इसको बेचकर रुपयों का इन्तजाम कर लो। पाप कटे एक, उठो न...?’

‘...विमला ! भगवान के लिए अपना मुँह बंद रखो मुझे जलील मत करो। मैं इतना पतित हो गया हूँ कि तुम्हारी भेंट की चीज को...।

अरे नादान छोड़ो भी इस बात को। यह भी ‘प्रजेन्ट’ है और यदि है तो ऐसी भेंट का भी कोई महत्त्व होता है क्या ? मैं तो सोचती हूँ कि एक पाप कट रहा है। फिर जब आदमी को जरूरत होती है तो क्या वह भेंट और पुरस्कारों का भी ख्याल करता है। क्या यह तुम्हारी चीज नहीं है...? बोलो, कुछ तो

बोलो...? ठीक है सता लो जितना जी में आये फिर थोड़े ही मौका मिलने वाला है...?

लो रुठ गई और आँखों में आँसू तो तैयार ही रखती हो बाहर नकालने को। तुम जानती हो विमल की मुझे तुम्हारी आँखों में आँसू देखकर कितनी वेदना होती है? बस यही न कि हम लोग रो नहीं सकते इसलिये हम लोगों को दुख नहीं होता है न? और तभी हम पत्थर और मिट्टी के बने होते हैं या कहे जाते हैं। दिल नहीं होता, जजवात नहीं होते, क्यों?

भगवान के लिए बस करो मेरे मालिक। अब नहीं सुना जाता बस। जान गये हो न कि कितनी कैसी बात भी कह लोगे, तुमको छोड़ना भूलना या तुमसे अलग होना बश की बात नहीं, तभी ऐसी बातें कर जाते हो। जानते हो, अब तुम्हारे बिना जी नहीं सकती, रह नहीं सकती—तभी सताते हो? मैं भी कैसी पागल और दीवानी हो गई कि भूल ही गई, तुम पुरुष हो। तुम्हारा स्पर्श मेरे पत्थर के हृदय से पानी निकाल देगा यह मैं कभी नहीं जानती थी? तभी तो यह हाल हुआ। अब रोऊँ तो क्यों और कोई क्यों परवाह ही करे मेरी ..?

देखो विमल तुम कहे ही जा रही हो। कुछ हमको भी मौका दोगी बोलने का कि नहीं? कब मैं तुम से ऐसा भेदभाव पालता हूँ कि हममें और तुममें कोई अन्तर है? कि तुम हमसे किसी बात में छोटी हो और हम ऊँचे, लंबी नाक के। हमने ऐसा भेद-भाव कब पाला है, बताओ तो सही? मुझे आज, बिलकुल आज की विमल से मतलब है, उसी को मैं जानता हूँ जो गंगा की तरह निर्मल और पवित्र है। किसी की पिछली बातों और जिन्दगी से हमें क्या मतलब? और इस दुनिया में कौन दूध का धुला है बताओ हमें? फिर किसी को क्या हमने तो जान बूझ कर चोट खाई है। मुझे तो शर्म लगती है। कितना करती हो तुम हमारे लिए। मेरी

आत्मा मेरा साथ नहीं देती इन सब बातों में । फिर यदि जाऊँगा और कहीं इन्तजाम न होगा तो किससे कहूँगा तुम्हारे अलावा ? पर सोचो तो जरा कब तक चलता रहेगा यह सब...?

...जिन्दगी भर । पर जब मौका दोगे तब न ? अब कौन सा काम रह गया मुझे करने को ? कौन सी साथ शेष रही रे दुष्ट ? तुम मेरी आखरी साथ हो ।

“...तेरी सूरत से नहीं मिलती किसी की सूरत,

हम जहाँ में तेरी तस्वीर लिये फिरते हैं...।”

“...बस शायरी करने बैठ गईं । इसके अलावा भी कुछ आता है...?”

“...मुझे कह लेने दो पूरी बात । हाँ, अब मजबूरी आ गई है न मेरे सामने तभी उसका नाजायज फायदा उठा रहे हो । उठाओ, देखें कब तक ऐसा कर सकोगे ? ये तो बताओ समीर बाबू तुम कब तक अलग समझते रहोगे मुझे ? तुम्हें जाने क्यों ? मुझ पर विश्वास ही नहीं बैठता ? मैं भी रंगून गई थी उस बार जब मुझे यह हार भेंट में मिला था । पर मेरे जाने में और तुम्हारे जाने में बड़ा अंतर है डार्लिंग । तुम वहाँ ‘कल्चर’ के हिमायती बनकर जा रहे हो, उसे ऊपर उठाने और कुछ लाने भी । पर...पर मैं वहाँ सब कुछ गिराने, लुटाने और देने को ही गई थी । मुझे बदले में मिला कुछ नहीं । बस यह कुत्तों के समान गुजरने वाली बिना किसी इज्जत और महत्त्व की जिन्दगी और बैंक में कुछ हजार का ‘वैलेन्स’ क्या यही सब कुछ है, यही जिन्दगी है ? सोचती हूँ, वह पैसा वहीं कुछ अच्छे काम में खर्च हो । तभी मुझे शान्ति मिलेगी और उसका सदुपयोग होगा । मैं बड़ी विचित्र स्त्री हूँ रे समीर । साधारण आदमी मुझे समझ नहीं सकते और समझते भी है तो गलत । यह बातें सब इसलिए कह डालीं कि तुमसे क्या परदा ? मैं तो सोचती हूँ—तुम हवाई जहाज से शान के साथ रंगून

जाओ। आगे देखा जावेगा...।'

'...हां, हवाई जहाज से जाऊँ...? फिर आप क्यों नहीं चलती मेरे साथ...?'

...देखा पगले, तुम तो दीवाने हो गये हो बिलकुल। सब तर्क और विवेक खो बैठे हो। तुम्हारी समाज में लोगों में क्या इज्जत, मान प्रतिष्ठा है—जानते हो? मेरे साथ जाओगे, लोग क्या कहेंगे? एक दिन तुम लोगों से डर कर मुझसे संबन्ध तोड़ दोगे। बस मैं लुट जाऊँगी बैठे ठाले। नहीं, नहीं तुम मेरी अमूल्य निधि हो। मैं तुम्हें किसी कीमत पर नहीं खो सकती। तुम तो जाओ खूब शान से। खूब मजे से घूमना। मुझे इसी में प्रसन्नता होगी। और न जाने की बात भी सोचोगे तो बड़ी पीड़ा होगी। पर समीर बाबू वहाँ जरा बचकर रहना और लौट आना वापिस जल्दी से नहीं तो फिर हवा में ही बातें करो—समीर ठहरे न? दर्शनों के लिए आँखें प्यासी रहें और हुजूर का पता भी न पड़े, किस दुनिया में हैं? और अपने ही द्वारा मैं अपना सब कुछ लुटा डालूँ...

इस तरह कई रातें समीर की तैयारी करने में ही विमला ने बिता दीं। यह कपड़ा, वह चीज, ये सामान ले जाना है। फलों चीज देखता है, अमुक जगह पाता है। यह कपड़ा इस दिन वह उस दिन पहिना जावेगा। फलों 'टाई' इस सूट को 'मेंच' करेगी, वह इसको आदि आदि। रवानगी के दिन जबलपुर तक वह उसे भेजने भी गई। समीर चल रहा है पर उसका जी कतई विमला को छोड़कर जाने को नहीं है। उसकी आँखों में पानी भरा है। आज उसने औरत को जाना वह क्या चीज है? बात भी सच है, औरत को अपने नीचे रखकर आदमी सही माने में उसके बारे में कभी नहीं सोच सकता है। समीर ने आज विमला को पहचाना वह क्या थी? और हमारी ऊँची नाक वाली समाज ने उसे क्या बना के रखा है, 'सोसायटी गर्ल', अभारतीय और वेश्या। पर वह क्या मामूली औरत थी...?

समीर की गैरहाजिरी में विमला ने रातें रो-रो के गुजारीं । उसे उसकी हर बात याद आई । बस समीर लौटकर आ जावेगा इसी का सुख उसे थोड़ी बहुत शान्ति दिये था । जिस दिन वह आया स्वागत की बड़ी तैयारी करके रखी थी उसने । घर आया माला पहिनाई । झूठे से जूते खोलकर उसके पैरों को सहलाने लगी ।

‘है क्या यह सब...?’

मैं जानती हूँ यह क्या है, इसमें क्या सुख है ? सच मुझे आपकी सेवा करने में, देख-रेख करने में बड़ा मजा आता है, बड़ी शान्ति मिलती है । काश मुझे हमेशा यह मौका मिलता तो फिर आपकी यह हालत न रहती । आपके लिए हर समय एक आदमी की जरूरत है । इतने थोड़े दिनों में ही कितने दुबले-पतले हो गये । जैसे कोई पहाड़ को खोदकर नदी बनाते रहे हों । फिर मेरा तो अधिकार है आपकी सेवा करने का । आपका सारा शरीर मेरी सम्पत्ति है, इसमें आपको क्यों एतराज होना चाहिए ? खैर, सुनाओ वहाँ के हाल चाल । कहो कैसे ठाट रहे ? कितने लोग शहीद हुए और कितने घायल... ?

वहाँ के सारे हाल और किस्सायें कई रात और दिन जागकर सुनती रही वह—उसी के पास बैठकर ।

दिन गुजरते गये और उनके प्यार की गाँठ कसती ही गई दिनोदिन । अब वे एक दूसरे के बिना रह नहीं सकते थे, जी नहीं सकते थे । समीर ने एम० ए० पास किया । रिसर्च करने की इच्छा थी पर उतना पैसा कहाँ था ? विमला ने कह दिया, जितना पैसा चाहिए मुझसे लो । पी—एच० डी० करो । यदि नहीं करोगे तो मुझे बड़ा दुख होगा । फिर एम० ए० के बाद कोई नौकरी मिल जाती तो भी एक बात थी । क्या जिन्दगी ऐसे ही

गुजारनी है ? इतनी छोटी चीज है आपकी जिन्दगी जिसको ऐसे ही खतम कर दिया जाय ?

समीर को मजबूरी रही । कोई नौकरी न मिल सकने के कारण उसे पी—एच० डी० करना ही पड़ी । विमला ने सारा खर्च उठाया उसका । जब कभी समीर निराश हो जाता, जैसे की उसकी आदत-सो बन गई थी, तब विमला उसे प्रोत्साहित करती, समझाती और उसका काम आगे बढ़ाती । कहती—यदि काम नहीं करोगे तो मुझे बड़ा दुख होगा । तभी समीर बड़ी लगन से काम करता । वह जानती थी कि जीवन में एक ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है जब आदमी घबड़ा जाता है और कर्तव्य से विमुख होकर अकर्मण्य बन जाता है । वह समझ बैठता है—उससे कुछ होने का नहीं है । यही कुछ स्थिति समीर की थी आजकल । विमला को और कोई काम ही न था । बस, उसकी प्रेरणा बन गई थी और तभी समीर का काम तेजी से आगे बढ़ रहा है । एक स्कूल में इन दिनों वह शिक्षक थी । उससे काम बनते न देख उसने ज्यादा वेतन वाली दूसरी नौकरी की और समीर को कभी कोई कमी महसूस नहीं होने दी ।

समीर सोचता है—बस नौकरी मिलते ही वह अपनी विमल को अपने साथ किसी दूसरे शहर में ले जावेगा जहाँ उन दोनों को कोई न जानता हो । सुख की जिन्दगी बसर होगी और बस खूब घुटेगी जब मिल बैठेंगे दीवाने दो । बेहिसाब बंचैनी थी उसे । कब समय आवे और वे दोनों बस वे दोनों ही । वह सोचता है—पर क्या यह संभव है ? वह पसंद करेगी मुझसे शादी करना ? कहाँ उसकी वह शानोशौकत और दिल तथा दिमाग की अमीरी और कहाँ यह मेरी अकेली गरीबी ? हर स्त्री के जीवन में प्यार और वासना—दो चीजें उसे पूर्ण करने के लिए आवश्यक हैं ।

जिसमें प्यार गौण और वासना प्रमुख होती है। उसकी वासना को तो थोड़ी बहुत शान्ति मिलती है। प्यार—जैसा कि वह कहती है कि मुझसे उसे मिल रहा है—मिल ही रहा होगा ? फिर मैंने उसके जीवन में सब कुछ उसको लुटाते या देते ही देखा है, तब क्या वह यह सब पसंद करेगी ? और जो स्त्री जीवन भर मर्द से बेवकूफ बनती रही तथा उन्हें बेवकूफ बनाती रही, उसका क्या भरोसा ? स्वच्छन्दता के जीवन में रहनेवाली स्त्री क्या यह सब पसन्द करेगी, उसे किसी बात पर विश्वास ही नहीं बैठता और न वह कोई बात स्थिर ही कर पाता है। उसके सामने विमल की दो तस्वीरें बार बार आती हैं। एक दूसरे को मिटाती बनाती-सी, वह किसको सही माने और किस पर विश्वास करले ? उसके दिमाग में यह चीज जरूर आती है कि आज की विमल से कोई धोखा या दिखावे की अपेक्षा सही अंदाज नहीं होगा आज की विमल की धुंधली तस्वीर जब उसके सामने आती है वह सोचता है—क्या इस तरह की औरतें होती होंगी—इस दुनिया में ? ऐसा प्यार भरा दिल और त्यागमयी दुनिया ? धोखा तो नहीं है यह, सपना तो नहीं देख रहा है कहीं वह ? इन सब बातों को सोचकर उसके दिमाग में यह चीज जरूर आती है कि भले ही वह इन बातों पर यकीन न कर सके, क्योंकि आज की दुनियाँ में कमी है ऐसी औरतों की पर होती तो हैं ही ? तभी विमल पर अविश्वास करने की कहीं भी गुंजाइश नहीं रह जाती उसे ?

उसे इस बात का थोड़ा बहुत डर सा जरूर लगता है कि कहीं उमने विवाह का प्रस्ताव रखा और विमल ने नामंजूर कर दिया तो बड़ी गड़बड़ी मच जावेगी। पर यदि वह उसके प्रस्ताव को अस्वीकृत करती है तो क्या वह प्यार उसका नाटक है ? वह अपने पर विश्वास करके इस निष्कर्ष पर जरूर आता है कि वह राजी हो जावेगी। अतीत के अनुभवों की चोटों ने और इस बेदर्द दुनिया

के रवैये ने उसे कुछ दुखी जरूर कर दिया है तभी उसका यह हाल बेहाल है ।

बिमला भी आजकल यही सब कुछ सोचा करती है कि क्या वह समीर से शादी करले ? और क्या यह संभव है कि उससे शादी करके वह सुखी हो सकेगी या दुनिया वाले उसे सुखी रहने दे सकेंगे ?

और फिर क्या ऐसी चीज हो सकती है कभी ? उसे मेरा सम्पूर्ण अतीत मालूम है कि मैं वर्षों 'वेकाई' और 'नर्स' रही । सारा संसार जानता है हम लोगों के वहाँ के जीवन को । चरित्र-वरित्र का राग तो अलापा ही नहीं जा सकता किसी के सामने । फिर मैं कौनसी चीज लेकर उसके सामने किस मुँह से कुछ कहूँ ? और कहीं उसने 'नाहीं करदी तो.....? तो फिर बना-बनाया खेल बिगड़ जावेगा ।

मुझे लगता है—वह मेरा कहना तो वैसे नहीं ही टालेगा पर क्या यह ठीक होगा ? मेरी समाज में क्या इज्जत है ? वेश्याओं का सा जीवन वहाँ हम लोगों का रहा है । समीर से शादी करके उसकी प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाना ही क्या प्यार है ? यह कहाँ तक न्याय होगा ? उसकी समाज में कितनी इज्जत है । जिस तरफ से निकलता है सैकड़ों हाथ अभिवादन को उठ जाते हैं । सब लोग उसको भला और सभ्य मानते हैं और इज्जत की दृष्टि से देखते हैं । अपने स्वार्थ से अंधी होकर मैं उसकी इतनी हानि तो नहीं ही करूँगी । इतना सीधा है मेरा समीर—बिलकुल देवता । उसकी तो पूजा करने को ही जी चाहता है—शोषण करने को नहीं ? फिर क्या जरूरत है मुझे शादी की ? शादी में दो चीजें स्त्री को मिलती हैं—वासना की शान्ति और पुरुष का प्यार । वासना गौण और प्यार प्रमुख । वासना की शान्ति मेरी हो चुकी है । क्या अभी तक उसकी आवश्यकता है मुझे ? थकी नहीं हूँ

उस दानवी वातावरण से ? रही प्यार की बात, सो वह तो मुझे मिल ही रहा है। शेष रह जाता है—एक डर। वह यह कि समीर मेरे पास ही रहे, मेरा ही रहे, दूसरों का न हो जावे। स्त्री के लिए अपने प्रिय के सामीप्य-सुख से बढ़कर कोई सुख नहीं है इस दुनिया में। उसको तो वह चाहती ही है पर वह यह भी जानती है कि जीवन एक जुआ है। मैंने दाव लगाया है। हार और जीत उसके दो परिणाम होते हैं। इन्हीं दो में से कोई एक मुझे मिलेगा। जब जुआ ही खेला है तो फिर डर ही क्यों ?

फिर मुझसे शादी करके वह सुखी नहीं हो सकता। मैं जानती हूँ—मैं किसी को खुश नहीं कर सकती। मेरा जीवन इस बीच ऐसे साँचे में ढल चुका है जहाँ मुझे कभी इसकी जरूरत ही नहीं पड़ी। मैंने सब कुछ लिया लोगों से पर दिया कुछ नहीं। मेरे पास कुछ नहीं बचा अब जिससे वह दिल बहला सकेगा ? सिर्फ यह हाड़ और मांस का मरा हुआ शरीर है जो मर कर भी बोलता है, देखता सुनता है और चलता फिरता भी है। मैं तो लुट ही चुकी हूँ इस बेचारे को क्यों चक्कर में डालूँ ? वह बेचारा है—बिलकुल बेचारा—दया का पात्र। न तो उसे कभी ऐसा करने या कहने का साहस ही होता है और न वह कहना ही चाहती है।

इस बीच विमला के संबंधियों और घर के लोगों ने चाहा-विमला को अब शादी कर लेनी चाहिए। ऐसे भी लोग जमाने भर की बातें करते हैं। फिर ऐसे वैसे जिन्दगी काटी जा सकती है ? अभी तो उसकी क्या हालत हो चुकी है ? २३-२४ साल की उम्र में बूढ़ी सी लगती है। घर के लोगों ने दबाव डालना शुरू कर दिया। बड़े संकट में वह पड़ गई। सोचती है—क्या उसकी शादी हो सकती है ? कोई उससे शादी करेगा भी और यदि की भी तो क्या सुखी हो सकता है उसके साथ रह करके ?

और फिर क्यों करे वह शादी—किससे ? एक और जानवर शादी करके घर पर बाँध ले जो उस पर हुक्म चलावे, उसकी सेवा करे वह और उसके बदले में वे महाशय उससे कैसा भी उचित अनुचित बुरा, भला व्यवहार करें और वह सुनती रहे क्योंकि वे उसके पति ठहरे न ? पर वह कहती—ऐसी शादी और मुहब्बत से अब हम बाज आये । और फिर कौन आदमी मेरी यह सब कहानी सुनकर भी मुझे इज्जत की जिन्दगी बसर करने देगा ? मिलीटरी के जीवन में मिले हुए आदमी सरीखा और कोई आदमी मिल गया तो मुझे मरना ही पड़ेगा और इसके अलावा कोई चारा मेरे पास न रहेगा । क्यों मैं व्यर्थ ही जान दूँ ? आज-कल, जाने क्यों मुझे अपनी इस ऊबड़-खाबड़ जिन्दगी से भी प्यार हो गया है ? मैं जीना चाहती हूँ, कुछ दिन और अपने प्यारे समीर के लिए । जिन्दगी के थोड़े से बचे सुखी क्षणों को अपने अतीत के दुखी दिनों की याद करके दुखी बना लेना कहाँ की बुद्धिमानी है ?

फिर शादी के सम्पूर्ण सुख मिल तो रहे हैं उसे । कौन सी वान बाकी है ? उसने घर के लोगों को समझाने की चेष्टा की पर वह असफल रही और वे उससे ज्यादा नाराज हो गये । उन लोगों ने कहा—इस तरह एक दिन यह पागल ही हो जावेगी इसे जल्दी ही शादी कर लेनी चाहिए ।

उसकी अब बड़ी गंभीर स्थिति थी । क्या करे क्या न करे, उसे कुछ समझ ही नहीं पड़ता था ? घर के लोगों का दबाव डालना स्वाभाविक ही था । उसे मजबूरी आ गई और बन्धन से छुटकारा मिलना असंभव सा हो गया तभी उसने एक दिन अपने भोले समीर को चिट्ठी लिखी—

मेरे देवता,

मैं बड़ी गंभीर स्थिति में हूँ । क्या करूँ क्या न करूँ—कुछ

समझ में ही नहीं आता ? कभी किस दिन क्या कर डालूँ— यह भी निश्चय नहीं है। तुम्हारे स्पर्श में इतनी ताकत है कि वह एक पत्थर के बने दिल को पिघला कर पानी कर देगी और मुझे दीवाना कर देगी—मैं यह कभी नहीं जानती थी ? अब मेरी हालत बड़ी खराब है। तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकती और न रह ही सकती हूँ। यह क्या हो गया और अब क्या करूँ कुछ समझ ही नहीं पड़ता है ? सच मैंने निश्चय कर लिया था कि ऐसी गलती कभी न होगी। पर उस दिन तुम मेरे यहाँ सुबह आये और मेरी रात सो काली और अंधेरी जिन्दगी को सुफेद बना गये। तभी से मेरी जिन्दगी में सबेरा ही है। मैं इसी कारण रात दिन जागती हूँ और इतनी तकलीफों के बावजूद भी अब रात नहीं चाहती। क्या हो गया था मुझे उस दिन कि मैं अपने को संभाल ही नहीं सकी थी ? पर मैं उसके लिए शर्मिन्दा या दुखी नहीं हूँ। ऐसे हूँसीन मौके जिन्दगी में हजार बार आवें मैं उनका स्वागत करूँगी।

इधर घर के लोग न तो चैन लेते हैं और न मुझे ही लेने देते हैं। उन लोगों ने आन्दोलन मचा के रखा है कि मैं शादी कर ही डालूँ। पर क्यों ? किससे ? शादी से क्या होता है मैं कुछ नहीं जानती ? जो कुछ जानती हूँ वह पा गई और पा रही हूँ। शादी सिर्फ तुमसे करने को जी चाहता है पर दया आती है तुम पर। मैं तुमको बरबाद नहीं करना चाहती हूँ। तुम्हारी सिधाई और भलेपन का मैंने काफी जायज और नाजायज फायदा उठाया है और उठा रही हूँ, पर क्या करूँ मजबूरी जो है मुझे अच्छा भी तो लगता है ऐसा कुछ करने में। तुम इतने भोले और सीधे हो कि मेरी बात को कतई नहीं टालोगे पर निश्चित मानो कि सुखी नहीं हो सकेगे मेरे साथ। मेरी भी यह कोई जिन्दगी है ? छीं.....छीं..... ! इससे तो कुत्तों की जिन्दगी

बेहतर होती है। मेरा क्या अस्तित्व है..... कीड़े-मकोड़ों की सी जिन्दगी। जिस राह से निकल जाती हूँ, लोग हँसते हैं उंगली उठाते हैं। फिर मुझे प्यार चाहिए था, सिर्फ प्यार, वह मिला ही तुमसे। अब शेष क्या रहा जिसके लिए शादी करूँ मैं ?

मेरी जिन्दगी बड़ी उबड़-खाबड़ रास्ते से आई है। मेरे जीवन में जितने आदमी आए सबने मेरे खून की अंतिम बूँद मुझमें से निचोड़ लेनी चाही। तुम सिर्फ एक ऐसे आदमी मुझे मिले हो जो मुझे खून-की अंतिम बूँद दे देना चाहते हो। मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है। तुमसे मिल के तो मैं कृतकृत्य हो गई हूँ। इसका बदला कब और कैसे चुका सकूँगी—भगवान ही जानें।

आज सोचती हूँ कि तुम्हें सारी बातें बतला दूँ जिससे तुम जोखे में न पड़े रहो। मैं तो बड़ी स्वार्थी थी रे समीर। जब मैं नर्स थी तो एक मरीज मेरी अस्पताल में आया था जो अस्पताल में कुछ दिन रहकर मुझे मरीज बनाकर चला गया। मैं उसकी ओर आकर्षित हुई थी और महसूस करती थी कि उसके बिना रह नहीं सकूँगी ? तभी उससे शादी का प्रस्ताव किया पर निराश होना पड़ा था। तबसे मेरे जीवन में एक बड़ी विचित्रता आ गई। मैंने हँसा—अपने पर ही लगा, जीवन ईंसने और खेलने का ही तो है ? बिल्कुल हँसने-खेलने और मजा करने को, क्यों रोऊँ मैं ? फिर मेरे रोने की चिन्ता ही किसको है ? क्यों जताऊँ, अपने आपका महत्त्व दूसरों को। क्या हम हैं इतने महत्त्वपूर्ण ? बिल्कुल नहीं। तभी मैंने उस जीवन भर जी भरके 'फ्लर्ट' किया। वह मरीज महोदय यह देख देखकर जलते। मुझे उनके जलने में मजा आता। तभी मैं उनको जी भरके जलाती। 'वालरूम' में जब वे मुझसे नाच के लिए कहते

मैं इन्कार कर देती । पर दूसरे क्षण उन्हीं के सामने दूसरे के साथ जी भरके नाचती । जिसमें वे जले । क्योंकि उनके जलने में ही मुझे शान्ति मिलती थी । और इसी तरह लुटती गई तथा अपने लिए, समाज को और संसार को बेकार हो गई ।

मिलीटरी में तो मुझे डाकू ही डाकू मिले । तभी मुझे उस जीवन से घबराहट हुई और मैं ऐसी जगह तथा इन्सान की खोज करने निकली जहाँ प्यार मिले और शान्ति भी मिल सके । जिसकी गोद में सिर रखकर अपने गम को गलत किया जा सके । तुम मिले, मानो सारा जमाना मिल गया । मैंने सब कुछ पाया तुमसे, तुम्हारा शुक्रिया अदा किस तरह करूँ ? इस स्वार्थ के लिए चाहो तो माफ कर देना । माफ कर दोगे...न ? मेरी जिन्दगी बड़ी गंदी रही है । आगे और न सुनो, कहीं तुमको नफरत न हो जावे मुझसे, इसका बड़ा डर है मुझे ।

रंज न करना । खुश रहना, तभी मैं खुश रह सकूँगी और खुशी से मर भी सकूँगी । मुझे भूलने की कोशिश करना । मैं भी कोई प्यार करने की और याद रखने की चीज हूँ..... ? यह जिन्दगी है और तभी यहाँ ऐसे उतार-चढ़ाव, ज्वार-भाटे होते ही रहते हैं । तुम्हें प्यार किया और तुमसे प्यार पाया, कितना कैसा—कह नहीं सकती ? तुम्हें सुखी भी रखना चाहती थी पर नहीं कर सकी, मजबूरी है । तुमसे शादी करके संभवतः और सुखी होती पर जाने क्या नहीं कर सकी ? मुझे ढँढ़ने की कोशिश न करना । अब तुम्हें मैं नहीं ही मिल सकूँगी ।

अस्तु ! अब अगले जन्म में ही भेंट होगी । हाँ ! यदि यही देह तुम्हें और हमें फिर से मिल सकी तो ? पर यह अनिश्चितता क्यों ? मुझे विश्वास है हम मिलेंगे । तभी तुम्हारी सेवा

करूँगी । इसी कामना को लिये जा रही हूँ । जितने क्षण तुम्हारे साथ प्यार की दुनिया में काटे हैं उनकी मधुर स्मृति में ही शेष समय जहाँ कहीं काट लूँगी, मुझे बिल्कुल विश्वास है इस बात में, अपने पर । कोई अच्छी सी लड़की से शादी कर लेना । दुल्हन लाना और प्रेम से रहना । तुम्हारी खुशी ही मेरी खुशी रहेगी । अंतिम बार तुम्हारे मंगल की कामना करती हुई तुमसे क्षमा याचना करती हूँ । बस अलविदा ।

‘हम जहाँ में तेरी तस्वीर लिये फिरते हैं... ?

तुम्हारी ही अपनी

विमल

— — —

खुदकुशी

दफ्तर से लौटने में आज कुछ देर हो गई थी। मैंने चाय पी और नौकर से आज के सारे अखबार ला देने को कहा। 'ज्वार भाटा' के मुख्य पृष्ठ पर मैंने अपने अजीज और अजीबो-गरीब दोस्त राजा का चित्र देखा। लगा, कहीं मेरा यार किसी देश का राजदूत या किसी राज्य का गवर्नर तो नहीं हो गया। क्योंकि आजकल अक्सर जवाहरलाल की सरकार के कार्यालय से किसी भी अदना-बदना आदमी के राजदूत या गवर्नर बनने की खबर छपा करती है और तभी उसी के साथ उसकी तस्वीर भी निकलती है। पर ज्योंही फोटो के नीचे नजर गई तो लिखा देखा 'राजा ने खुदकुशी कर ली।' मैंने सोचा-कहीं के राजा ने खुदकुशी कर ली होगी और भूल से मेरे दोस्त का फोटो उस खबर के साथ छप गया है। क्योंकि आज के जमाने में पत्रों और पत्रों के सम्पादकों से कोई भी गैरजिम्मेवारी की खबर के छपने तथा छपवाने की अपेक्षा की जा सकती है। पर ज्योंही उस खबर को आगे पढ़ा तो उसमें साफ ही छपा था कि प्रान्त के मशहूर तरुण कवि और कहानीकार राजा ने खुदकुशी कर ली। खुदकुशी का कारण अभी तक अज्ञात है। पुलिस सरगमी से खोज-बीन कर रही है। राजा की टेबिल पर एक चिट्ठी मिली है जिसमें लिखा था कि आत्म-हत्या के लिए मैं खुद जिम्मेवार हूँ, अन्य कोई नहीं।

मुझे बड़ा दुख हुआ। मैं आश्चर्य में पड़ गया कि ऐसा क्यों हुआ। राजा को ऐसा कौन-सा दुख हो गया जिससे उसे ऐसा करना पड़ा? वह दुख जरूर ही खुदकुशी की तकलीफ से ज्यादा होगा तभी तो वह ऐसा कर बैठा। पर आत्म-हत्या को

उसने हमेशा ही बड़ा भारी पाप और कायरता की चीज समझा है। फिर राजा को अपनी जिन्दगी बड़ी प्यारी थी और वह हमेशा हँसता ही रहता था। जिन्दगी को उसने सदैव ही हँस खेल कर काट लेने की चीज समझा है। कभी लोगों ने उसे दुखी या चिन्तित नहीं देखा। वह जिन्दगी को बिल्कुल नान-सीरियस (non-serious) चीज समझता था और तभी हँसता था अपनी गम-गीनी पर भी। वह कहता था—जिन्दगी बिल्कुल गम्भीर चीज नहीं है। वह हँसने-खेलने को ही है। जो उसे गम्भीर समझते हैं वे बड़े मूर्ख हैं और कभी भी सुखी नहीं हो सकते। वैसे खास-सुख और शांति उसे न थी। सुख और शांति होती कब है? जब आदमी कुछ करता है या करने के लायक होता है और यदि कुछ करे-धरे तो लेखक या कवि बनने की नौबत ही क्यों आवे। क्योंकि जब आदमी बिल्कुल निकम्मा हो जाता है—अपने लिए, समाज के लिए और संसार के लिए बेकाम तभी तो वह लेखक और कवि बनता है। फिर भी वह सुखी था। यदि सुखी नहीं था तो बनने की कोशिश तो करता था या दिखावा ही करता था कि वह सुखी नहीं है। वह हँसता था अपने पर ही खूब जी भर कर और उन पर भी जो जिन्दगी को गम्भीर लेते हैं, समझते हैं।

बस इसके आगे मुझसे और न पढ़ा गया कुछ। मेरी नजर कमरे में लगी हुई उसकी खुशनुमा और हँसमुख तस्वीर पर गई जिसके चेहरे पर उसकी मस्ती और दीवानापन अँगड़ाइयाँ ले रहा था। मेरी आँखों में आँसू आ गये और एकदम खयाल आया उसकी बदनसीब जवान औरत और बूढ़ी माँ का। क्या होगा इनका हाल? राजा मेरा बड़ा अजीज दोस्त था और तभी मुझे अपने बचपन का रंगीन नक्शा याद आया जब हम दोनों साथ लड़ते-खेलते थे। वह लेखक बना और मैं सम्पादक। मैं उसके 'जीनियस' से बड़ा प्रभावित था। लोग जाने उसको क्या-

क्या कहा करते थे पर मैं तो उसकी उस लापरवाही और बेफिक्री की जिन्दगी का भी आशिक था, जाने क्यों ? कारण खोजने या जानने की मैंने कभी कोशिश नहीं की । कोई भी आदमी अच्छा लगता है, उससे प्यार हो जाता है पर उसके लिए कोई कारण का होना जरूरी नहीं है और न कारण जानने की या बतलाने की कोई जरूरत ही है ।

मैं भट से उठा और मैंने उसके सारे महत्त्वपूर्ण खत पढ़ डाले तथा एक ही साँस में उसके संग्रहों को भी देख डाला कि कहीं तो कुछ चीज दिखे जो उसे खुदकुशी को आमादा कर सकी । हर जगह उसने जिन्दगी को खूबसूरत और जीने की चीज बतलाया है तथा आत्म-हत्या और जीवन से डर कर भाग जाने की घोर भर्त्सना की है ।

मुझे इस सब में चैन न मिली तो बिस्तर पर लेट गया । पर वहाँ भी जब राहत न मिली तो उठा और नौकर से कहा, मेरा बिस्तर-सामान तैयार करो । मैं राजा बाबू के गाँव जाऊँगा । मैंने अन्य सब तैयारी की और रात की गाड़ी से चल हो कर दूसरे दिन ही उसके गाँव पहुँचा । गाँव भर में हाय-हाय मची थी—राजा बाबू बड़े अच्छे आदमी थे, दूसरों के बड़े मददगार । अपने को तकलीफ में डालकर, अपना नुकसान करके भी दूसरों की मदद करते थे । इसमें उनका कोई स्वार्थ नहीं रहता था ! दूसरों की मदद करने में वे अपनी तकलीफ या नुकसान का कभी भी खयाल न करते थे ।

मैं घर पहुँचा । माँ बेचारी अकेली बिस्तर पर लेटी थी और रोते-रोते उसकी हिचकी बँध गई थी । मुझे देखकर वह फिर से खूब ही रोई । उसकी ऐसी हालत में उसे अकेला देख मैंने पूछा—अम्मा, बहूजी कहाँ हैं ?

“बेटा, बहूजी.....तुम्हें नहीं मालूम ? राजा ने तुम्हें कुछ नहीं बताया ? अरे उसी बैरन ने तो प्राण लिये मेरे बेटे के । दो-तीन महीने पहिले अपने मायके गई थी । वहाँ से वह लापता हो गई ।”

मैं सन्न होकर रह गया । मुझे लगा, भले ही यह अकेला कारण न हो पर एक बड़ा कारण जरूर है उसकी मौत का । बेचारे को कोई सुख उसकी शादी से या बीबी से नहीं मिला । कैसा शेर, दूसरों का मददगार, नामवाला और दिलदार आदमी और कितनी निकम्मी, बेसमझ और बेदिल औरत जिसने कभी यह नहीं सोचा कि कैसा उसका घरवाला है । कभी तो कुछ खयाल किया होता । कैसी कैसी कल्पनाएँ उसने अपनी बीबी की कर रखी थीं और कैसी औरत मिली ? उसी अतृप्ति के कारण तो वह इतना भटका करता था । वैसे उसने शिकायत कभी भी कुछ नहीं की, सिर्फ घुटता रहा । वाह रे मर्द ! और कोई होता तो जाने क्या करके छोड़ता और अपने को सुखी कर लेता ।

मैंने कहा—माँ, हम सब तैयारी किये लेते हैं । तुम मेरे साथ चलो । अब यहाँ तुम्हारी देख-रेख कौन करेगा ? और फिर तुम्हारी यह हालत हो गई है । राजा नहीं रहा तो मैं तो हूँ । मैं किस दिन काम आऊँगा.....।

बस, मैं जाकर राजा के कमरे के सामान को ही पहिले बाँधने लगा । उसके सन्दूक का सामान जमाते समय मुझे एक डायरी मिली । मैंने उसे खोला तो उसमें कुछ लिखा था । बस मैंने सामान को तो जहाँ का तहाँ छोड़ा और उस डायरी को पढ़ना शुरू कर दिया ।

३० अप्रैल १९४६

मैं ‘इंटरमीजियट’ की परीक्षा देकर अपने गाँव आया हूँ । मुझे कोई खुशी नहीं है यहाँ आने में । वैसे यहाँ सब कोई है मेरा, माँ, बीबी और बहिनें भी; पर सिवा माँ के और कोई दिलचस्पी

मुझे किसी में नहीं है। लगता है जैसे अन्दमान-निकोबार आ पहुँचा हूँ। कुछ दिनों से मुझे अपनी बीबी में बड़ी कमी सी दिखती है। वह बोलती-चालती है पर न उसे ही कुछ अच्छा लगता है और न मुझे ही। मुझे उसमें कोई दिलचस्पी नहीं है। जब वह कभी कहती है कि तुम तो कहानी-कविता लिखकर दिल बहला लिया करते हो, मैं क्या करूँ तो मैं भी तपाक से कह दिया करता हूँ, कि क्या तुम्हें ताबीज बनाकर गले में पहिन लूँ, जाने मुझे आजकल क्या हो गया है और कैसा कुछ लगा करता है? मुझे बीबी में कुछ आकर्षण या अपनापन महसूस ही नहीं होता। पर यह तब हुआ है जब मैं हिम्मत हार गया, उसको अपनी पसन्दगी का बनाने में। शादियाँ आज के जमाने में भी अक्सर ऐसी बेमेल हो जाया करती हैं पर आदमी अपने आपको एक दूसरे के अनुकूल बनाकर भी तो सुखी हो सकता है। यह सब वहाँ कहाँ?

कुछ दिन पहिले का पूछा गया मेरी औरत का यह सवाल— कि दो-तीन साल पहिले का वह सब कहाँ गया, मुझे आज खयाल आया। और मैंने उस पर सोचना शुरू किया तथा उसका जवाब भी मेरे पास है। उस समय जो भी काम मैं करता, सब बिना सोचे-समझे करता था और इन चीजों को सोचने-समझने की तब कोशिश ही कौन करता है? प्यार की परिभाषा भी तो मैं उस समय नहीं जानता था और न मैंने इस चीज पर कभी सोचा ही था कि जब आगे चल कर मैं कुछ और हो जाऊँगा और तब इन पर कभी सोचूँगा तो इनमें कुछ भी न मिलेगा।

प्यार मुझे कहीं कभी मिला नहीं। उसी का तो यह परिणाम है कि मेरा हाल यह बन गया है। ऐसी स्थिति में संभवतः मैंने उसकी कुछ अवहेलना कर डाली हो पर उसके परिणाम में मैंने इतनी यह तकलीफें भी तो भोग डालीं कि मेरी फिक्र करना भी

लोगों ने छोड़ दिया। पर मैं उसे कैसे बतलाता कि प्यार कोई जबरदस्ती या कानूनी तौर पर करने की चीज नहीं है।

बात यूँ है कि प्यार किसी से भी नहीं किया जा सकता। उसके लिये दोनों पात्रों का मानसिक स्तर (Intellectual-level) एक होना चाहिए। चमड़े की सफेदी या शरीर की खूबसूरती से आदमी कहाँ तक दिल बहला सकता है? उसके लिए तो चाहिए दिल की सफेदी और मन की खूबसूरती ही। तभी कुछ काम बन सकता है। शरीर के अच्छे नक्शे के अलावा कुछ और भी तो हो। वह यहाँ कहाँ है? वह 'कुछ' है क्या आखिर? अपने शौहर के चेहरे की मुस्कराहट देखकर उसके मुँह पर हो खिलखिलाहट और कभी कहीं जरा भी उदासी उसे दिख जावे तो उसकी आँखें आँसुओं से भर जावें। यही चीज वह 'कुछ' है और यही 'कुछ' है प्यार! किताबों में औरत को जीवन-साथी लिखा गया है। मैं भी सहमत हूँ किताब लिखनेवालों के मत से। औरत कुछ दिल बहलाने का साधन थोड़े ही है। वह तो कोठों पर भी हो सकता है। और न सिर्फ इसी से सुख-शान्ति हो सकती है। बात यूँ है कि सुख-शान्ति तो प्यार से ही मिलती है, अन्य बातों से नहीं। पर प्यार कोई जबरदस्ती की चीज तो नहीं ही है जो किसी से भी किया जा सकता है। मैं यह किसको कैसे बतलाऊँ और फिर अकेला मैं क्या करूँ? तभी तो यहाँ वहाँ मन भटकता है। शायद कहीं मेरे मन का मीत मिल जावे?

अगस्त १९४८

मैंने कालेज में जिस दिन से उन्हें देखा है उसी दिन से आँखों के जरिये प्राणों में एक रेखा सी खिंच गई है। उनकी बात, चाल-ढाल, रहन-सहन सबका सब दूसरी लड़कियों से निराला है। उनकी वह सादगी, चेहरे का गांभीर्य, यही तो उनकी खूबसूरती है। तभी जाने कैसा लगता है कि कब इन्हें कलेजे से लगा लूँ। मैं

चुपचाप इन्हें देखा करता हूँ। जाने इन्हें कुछ इसका पता है कि नहीं ? पर मुझे इससे क्या कि वे जानती हैं या नहीं ? मैं अपना काम कर रहा था, उनका वे जाने। बस दिन गुजर रहे थे कुछ ऐसे ही।

अक्टूबर १९४८

समय की बात और मेरी तकदीर—मेरी उनकी बोलचाल हुई। वे मुझसे जल्दी ही घुल-मिल गईं। कहती हैं—जाने वे क्यों मुझसे प्रभावित हो गई हैं—बेहिंसाव। मेरा उनके यहाँ आना-जाना भी शुरू हो गया है। मैं भी उनके हर समय करीब ही रहना चाहता हूँ कि स्त्री है वह, जाने कब आत्म-समर्पण के क्षण आ जावे। और कहीं मैं गैरहाजिर हुआ तो बस, बस गई। एक समय, अकेला एक समय पुरुष और स्त्री की दोस्ती के दरम्यान में जरूर आता है जिस समय वह सब कुछ पुरुष को दे सकती है। यदि वह समय गया तो बस बात खत्म और फिर ऐसा समय कभी नहीं आता।

जिस तारीख से मैंने उनके यहाँ जाना-आना शुरू किया है, उसको बार बार मैं कलेन्डर पर चूम लिया करता हूँ, क्योंकि उसमें मुझे उनके चुम्बन का मजा ही आ जाता है। दूसरे का काम-वाम कर देने की मेरी कुछ आदत ही है, मुझे बड़ा मजा आता है। पर उनका काम तो जैसे मेरा ही काम था। इसमें दूसरे-तीसरे का सवाल ही नहीं उठता। धीरे-धीरे हम लोग अपने सुख-दुख की बातें एक दूसरे को बताने लगे। पर यह जरूर था कि वे इतने स्पष्ट रूप से मुझसे खुलकर नहीं कहती थीं कुछ, जैसा मैं कह दिया करता था। और मुझे हर समय लगा करता था—जैसे वे कुछ छुपाना चाहती थीं। हो सकता है—उतना वैसा विश्वास न करती हों वे मुझ पर। पर मैंने इस पर कभी कुछ ध्यान नहीं दिया।

पर जो चीज मुझे मेरे घर में कभी नहीं मिली वह उनके पास मुझे मिल गई। जो चीज मैं सपनों में और कल्पनाओं में खोजा करता था वह उनमें साकार होकर दिखी मुझे। बस मेरा मन रम गया और उनको छोड़ने को जी नहीं चाहता था। हर समय लगता—इन्हीं के पास बैठकर जाने कैसी-कैसी बातें करूँ जिससे सारे रंजोगम भुलाये जा सकें। उनसे बातें करने में मुझे बड़ी शान्ति मिलती थी। जिस अतृप्ति को लिये मैं भटका करता था अब वह तृप्त हो चली है कुछ कुछ। यदि प्यार कोई चीज होती है और वह इस दुनियाँ में है तो मुझे लगता है—मैं उसे पा रहा हूँ आजकल। मेरी सारी तकलीफों का इन्हें पता हो गया है। तबसे वे मेरी ज्यादा चिन्ता करने लगी हैं। हो सकता है यह प्रेम न हो, उनको मुझपर दया आती हो। जैसा भी जो कुछ हो, चाहे वह प्यार हो या धोखा, मुझे तो वह प्यार ही नजर आता है। क्योंकि प्यार भी तो आखिर एक रंगीन और हसीन धोखा ही है जिसे जान बूझकर आदमी खाता है और फिर भी उसे मजा आता है।

जिस दिन से उन्होंने शादी की मंजूरी दी है उस दिन से क्या कहना। मेरी जिन्दगी भी जिन्दगी बन गई है और आजकल उसका नक्शा ही कुछ और है। वह हर समय से ज्यादा दिलकश और हँसीन हो गई है।

अगस्त १९५३

मनुष्य की जिन्दगी में कभी भी ऐसी घड़ियाँ आती हैं जब वह यह तय नहीं कर पाता कि ये घड़ियाँ दुख की हैं या सुख की। ऐसे ही कुछ ये क्षण थे जब मैं कुछ भी तय न कर पा रहा था।

आज मेरे हाथ में दो खत हैं एक साथ। एक 'बुकपोस्ट' वाला लाल लिफाफा और दूसरा रजिस्टर्ड लेटर। मैंने बुकपोस्ट

पहिले खोला । वह था—उनकी शादी का निमन्त्रण । वह शादी जाने किसके साथ, हो रही थी जिसमें मुझे कोई दिलचस्पी नहीं थी । रजि० लेटर खोला । वह था मेरी ससुराल का । उसमें लिखा था—मेरी बीबी कई दिनों से गायब हैं घर से । चिट्ठी गड़बड़ न हो और मुझे ही मिले, तभी लगता था यह पत्र रजिस्टर्ड करके भेजा गया था । देखिए मेरी तकदीर की खूबी अब । यह भी कोई जिन्दगी है । धन्य रे भाग्य ! वाह रे भगवान !!

और तब..... ?

× × × ×

“माताजी तैयारी हो गई । चलिये गाड़ी का समय हो रहा है स्टेशन चलें ।” और तबसे मैं गाड़ी में बैठा-बैठा राजा की जिन्दगी के गम को ही सोचता जा रहा था । मेरे हाथ में एक अखबार था जिसके मुख्य पृष्ठ पर ही खबर छपी थी कि बहुत कोशिशों के बावजूद भी कवि राजा की खुदकुशी का कारण नहीं जाना जा सका ।

मुझे इस अखबार पर दया आ रही थी और बार बार मेरी आँखों से आँसू निकल कर भागे जा रहे थे ।

— — —

बाई बाई डार्लिंग

कलाकार बनने के लिए कलाकार की जिन्दगी में थिल चाहिए—एक कंपन चाहिए जो उसकी जिन्दगी को झुझकोर दे और अनायास ही उसके हाथों में कलम पकड़वा दे। यह 'थिल' आखिर है क्या ? यह 'थिल' है प्यार—औरत का प्यार। स्त्री का प्यार पुरुष की जिन्दगी की भी जिन्दगी है। वह उसमें सबलता लाता है और यहाँ तक कि कायर और डरपोक आदमी को दिलेर और बहादुर बना देता है। यह प्यार, आदमी की जिन्दगी में उसी तरह की अहमियत रखता है जैसे खाना-कपड़ा। जिस तरह आदमी खाने के बिना जिन्दा नहीं रह सकता, उसी तरह स्त्री के प्यार के बिना। और यदि यह नहीं है तो कुछ नहीं है। तब आदमी सब कुछ होकर भी कुछ नहीं। वह आदमी होकर भी इन्सान नहीं होता। वह सब कुछ बन सकता है लेकिन इन्सान नहीं बन सकता—कलाकार नहीं बन सकता। औरत का प्यार आदमी की जिन्दगी की ऊबड़-खाबड़ता को ठीक करके उसमें कोमलता लाता है, उसकी सुषुप्त भावना को जगाता है, तभी तो आदमी कलाकार बनता है।

यही कुछ चीज शैलेन्द्र की जिन्दगी में थी। उसने सैकड़ों कहानियाँ लिखी थीं और लिखे थे दर्जनों उपन्यास। आये दिन उसका नाम और तसवीर रोज अखबारों में लोग देखते थे पर उसमें वह चीज नहीं थी जो एक 'मेच्वर्ड-राइटर' में होनी चाहिए, जिससे वह सही माने में कलाकार कहलावे। वह सिर्फ इसीलिए था कि उसे कहीं प्यार नहीं मिला था—सच्चा प्यार। उसने अपनी रचनाओं में स्पष्ट ही तो लिखा है 'मैंने प्यार

जरूर किया है पर मुझे कभी भी किसी के द्वारा प्यार नहीं मिला, तभी मेरा यह हाल है। अब मुझमें और ताकत आगे बढ़ने के लिए शेष नहीं रही है। अब चाहिए मुझे प्यार-प्यार करने वाला, जो मुझे ताकत दे आगे बढ़ने की, नहीं तो बस अब खत्म होने को थोड़ी ही देर बाकी है। पर इसमें जबरदस्ती भी क्या है? मैं... मैं किसी से क्योंकर ऐसी कुछ अपेक्षा करूँ? बस तभी बढ़ रहा हूँ आगे जल्दी-जल्दी मिटने को। और मुझे आजकल लगता है—मिटना ही जिन्दगी है.....।' तभी वह बड़ा 'रेस्टलेस' रहता था और इसी कारण लोगों ने उसके संबंध में जाने क्या-क्या धारणाएँ बना ली थीं। उसे लोग इन्सान और कलाकार कम मानते थे—पागल और विक्षिप्त ज्यादा समझते थे और अब उसमें पागल होने की कसर भी कम हो रही थी। यदि वह अच्छे कपड़े नहीं पहिनता, दस-पाँच रुपये दोस्त कहे जाने वाले दुश्मनों के खर्च करने को पाकिट में नहीं रखता तो बस उसके दोस्त भी उसे पागल-खाने भिजवाकर ही दम लेते। अभी भी क्या, उससे दो-चार रुपये रोजमर्रा खर्च करवाते और बाद में उस पर हँसकर कहते—अच्छा चूतिया फँसा है, रोज चाय पिलवाता है और 'स्टेट एक्सप्रेस' सिगरेट भी फरमायशी है। अब उनको समझाये कौन? किसको फुरसत है कि चूतिया कौन है—हैवान कौन है? फिर मूर्खता किसी खास आदमी की बपौती तो है नहीं। वह तो सार्वजनिक वस्तु है जो सबमें थोड़ी-थोड़ी रहती है। फर्क सिर्फ यही पड़ जाता है कि कभी-कभी किसी के हिस्से में कम या अधिक पड़ जाती है।

कुछ ही दिनों पहले सरकार द्वारा उसकी एक पुस्तक पर पुरस्कार की घोषणा हुई है। तभी शाम को टाउन हाल में नगर के साहित्यिकों और पत्रकारों द्वारा उसका सार्वजनिक सम्मान किया गया। उषा ने इस तथाकथित कलाकार को पहिली बार ही

देखा है। रूखे-विरूखे बिना सँवरे हुए बाल, अलसाई आँखें, मानों सदियों से नींद आँखों का बसेरा ही छोड़ गई है। कुछ भूला-भूलासा, ऐसा था कथाकार शैलेन्द्र। तभी वहीं रोकने पर भी, धीरे से उषा के मुँह से एक आवाज निकल ही गई—मैं बनाऊँगी शैलेन्द्र को सच्चा कलाकार—स्वस्थ लेखक। मैं उसकी अतृप्ति को तृप्त करूँगी और फिर अतृप्ति को उसके पास कोई स्थान नहीं रहेगा। उसे प्यार की प्यास है। मैं शैलेन्द्र को प्यार करूँगी और यदि प्यार भी नहीं कर सकी तो नाटक ही ऐसा रचूँगी कि उसे महसूस हो सके—मैं उसे प्यार करती हूँ और तब.....तब वह.....।' तभी दूसरे दिन ही अपने घर उषा ने शैलेन्द्र को चाय पर बुलाया। चाय पीते समय उससे उषा ने पूछा—शैलेन्द्र जी, आपके घर पर यहाँ आजकल कौन-कौन हैं—आपकी पत्नी, माँ—पिता जी, लाइए न कभी मेरे यहाँ खाना खाने.....?

‘...लीजिए, आप बिना पूछे-ताछे ही सबको निमंत्रण दे गईं जब कि यहाँ कोई है ही नहीं, मेरे साथ आजकल। मेरी पत्नी मेरे साथ प्रायः नहीं ही रहती है। पिताजी के स्वर्गवास को हुए हैं एक लंबा अरसा गुजर चुका है। माँ अकेली गाँव पर रहती और खेती-पाती से ही गुजारा करती हैं; क्योंकि दुर्भाग्यवश उनका मुँह जैसा निकम्मा लड़का है न। मैं अकेला यहाँ रहता हूँ और पत्नी अपने पिता के साथ ही अक्सर रहती हैं। अब किसी पर उषा जी क्या वश? चाह कोई जबरदस्ती की चीज तो है नहीं। न्यार न तो किसी से जबरदस्ती करवाया ही जा सकता है और न किया ही जा सकता है। फिर यदि किसी से प्यार करने को जी चाहता है तो वापिसी में भी तो कुछ चाहिए.....? उषाजी! राजकी जिन्दगी उसके हर संबंध और रिश्ते ‘गिव-एन्ड-टेक’ के। पर वह मेरे घर में कहाँ.....? खैर छोड़िए भी इन बातों को। हाँ की बात शुरू हो गई..... जिसके सोचने से दुःख होता।

है तभी मैं उसे कभी भी नहीं सोचता.....? जाने मैंने कौन सा पाप या अपराध किया है जिसका फल या परिणाम यह मुझे मिला है। फिर मैं तो इसे विरासत समझकर चला जा रहा हूँ—जब तक चल सकूँ और बढ़ सकूँ? हाँ, यह तो बताइए आप करती क्या हैं आजकल...?

‘...मैं...। मैं...। शैलेन्द्र जी, हिन्दी विभाग में रिसर्च कर रही हूँ—प्रेमचन्द जी के पश्चात् हिन्दी कहानी का विकास और उसकी प्रवृत्त पर...। क्यों, क्या मेरा प्रश्न कुछ...कुछ अच्छा नहीं लगा.....आपको.....?’

‘...नहीं। ऐसी तो कोई बात नहीं। मैं किसी चीज या बात के परिणाम के अनुसार कभी बात नहीं करता और न मैं आपसे ही वैसी उम्मीद करता हूँ। बहरे हाल मुझे उस प्रश्न में दिलचस्पी नहीं थी इसलिए बदल दिया। गुस्ताखी और धृष्टता के लिए माफ करेंगी। अच्छा, अब क्षमा कीजिए। मुझे जाना है। आज के इस सबके लिए कोटिशः धन्यवाद। चलता हूँ अब, ईश्वर ने चाहा तो फिर मुलाकात होगी कभी। ओ० के०, बाई०...। बाई...।’

और इन शब्दों के साथ शैलेन्द्र चला गया, पर उषा के दिल में हलचल पैदा कर गया, एक हलका-हलका मीठा-सा दर्द छोड़ गया। उसे लगा, वह एक बार में ही हार गई और वह जीत गया हमेशा हमेशा को और अब। अब मुश्किल ही है बच सकना उसके हमले से। देखो क्या होता है...? पर पहिले का उसका वह कौल ज्यों का त्यों है। चाहे वह मिट भी जावे पर उसे निभावेगी और शैलेन्द्र को कलाकार बनावेगी मन्चा और नामी कलाकार। वह उसे महसूस करावेगी कि वह उससे प्यार ही पा रहा है और कुछ नहीं जिससे वह स्वस्थ और सत्साहित्य का सृजन कर सके।

और तभी आजकल हमेशा ही शैलेन्द्र के साथ उषा देखी जाती है—क्लब, नाटक, सिनेमाघरों में—सभा-सोसायटियों में। वह लोगों की अपने संबंध की राय और धारणाओं की कोई चिन्ता नहीं करती, क्योंकि उसके सामने तो एक वृत्त है—संकल्प और उसकी सफलता के लिए वह सब कुछ करने को—यहाँ तक कि अपने पास का सब कुछ खोने को भी तैयार है। शैलेन्द्र को भी अपनी उबड़-खाबड़ सी जिन्दगी में कुछ परिवर्तन-सा दिखा। अधियारी रात से भी अधेरी अपनी जिन्दगी में रोशनी की एक झलक दिखी। उसे लगा कोई उड़ेल रहा है नेह-आँखों से दिल में और तभी लोगों ने उसकी रचनाओं में भी परिवर्तन पाया। अब उसमें अपने वातावरण और परिस्थितियों के प्रति वह झुँझलाहट, स्त्रियों के प्रति वह बौखलाहट नहीं पाई जाती थी। उसकी कलम बरबस उसके हाथ में आकर उसकी उन लकीरों पर फिर जाना चाहती थी जहाँ उसने लिखा है—औरत प्यार नहीं कर सकती। औरत का प्यार उसी की तरह झूठा और बनावटी है। लोग भी अब कहने लगे हैं—शैलेन्द्र अब स्वस्थ साहित्य लिख रहा है, उसके विचारों में परिमार्जन आ गया है। यदि ऐसी ही चीजें वह जनता के लिए लिखता गया तो बड़ा हित होगा लोगों का।

इधर उषा की ओर शैलेन्द्र की आसक्ति भी दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। उसे विश्वास ही नहीं बैठता है इस सब पर जो उसकी जिन्दगी में होता चला जा रहा है। कभी कभी वह सोचता है—क्या यह सपना है सब कुछ? उषा कोई परियों के देश की राजकुमारी तो नहीं है जो उसे धोखे में डालकर छलने और बरबाद करने आई है ..? पर फिर उसके व्यवहार और लगाव को देखकर उसे इस सब पर विश्वास ही नहीं होता और इस संबंध में वह आगे बिलकुल ही नहीं सोचना चाहता। अभी अभी शैलेन्द्र ने अपनी नई किताब उषा को समर्पित करते हुए समर्पण में लिखा है—

उषा को—जो मेरी नई जिन्दगी के सब संघर्षों की साक्षीदार है। तभी एक दिन उषा के हाथ में उसे देते हुए शैलेन्द्र ने उसका हाथ पकड़कर सीने से चिपटा लिया और कहा—उषा, यह सपना तो नहीं है सब कुछ, धोखा तो नहीं है ? तुम क्या प्यार करती हो सचमुच और यह प्यार का कुँआ कभी खाली तो नहीं हो जावेगा.....?’

शैलेन्द्र के हाथों में जकड़ी उषा ने अपनी बंद आँखों को एक बार खोल कर फिर बिना कुछ कहे-सुने ही बन्द कर लिया और तब शैलेन्द्र ने उसके ओंठों को जाने कितनी बार चूमते हुए आगे कहा—मेरी नई जिन्दगी की साक्षीदार, यह तो बताओ अब नई जिन्दगी कब से शुरू होनी है...? सच उषा, मैं अब तुम्हारे बिना रह नहीं सकता—जी नहीं सकता। यह तो बताओ रानी, तुम मुझे प्यार करती हो न ..?

‘हाँ, करती हूँ और करती रहूँगी। प्यार करती थी तभी तो यह थोड़ा कुछ बन पड़ा, वरना क्या...? और यकीन मानो, तुम्हारी जिन्दगी में संतुलन रखने के लिए मैं तुम्हें हमेशा हमेशा प्यार करती रहूँगी, और...।’

‘पर...पर यह कब तक चलेगा ? हम शादी क्यों न कर लें ?’ अच्छा तो बात यहाँ तक बढ़ गई है। शादी करने के लिए आमादा हो गये हो...? शैलेन्द्र ! तुम मुझे गलत समझने का प्रयास मत करो। बात प्यार तक ही सीमित रहने दो। शादी की आवश्यकता बताने की चेष्टा मुझे मत करो। मैंने तुम्हें प्यार किया कि तुम प्यार के और स्त्री के महत्त्व को समझो तथा अपने जीवन की, कला की अपूर्णता को पूर्ण करो। मेरा वह काम—मेरा मिशन खत्म हुआ। अब मैं चलती हूँ और तुमसे कभी नहीं मिलूँगी और न तुम्हीं कभी मुझसे मिलने की चेष्टा करना। प्यार तुम्हें

हमेशा से करती आ रही हूँ और करती रहूँगी जब तक इस शादी में प्राण हैं, दिल है। वैसे पहिले तो बनावटीपन ही था पर अब...? लेकिन दिल को क्या करूँ ? उस पर मेरा क्या वश ? माफ करना । और अब अलबिदा, 'बाई-बाई डार्लिंग...' और तब आँखों में आँसू भरे, हवा की तरह दरवाजा खोलकर उषा, शैलेन्द्र के कमरे से, कभी न आने को चली गई...।

हिंडोले के आठ चक्र

संक्रान्ति को गाँव आया था। नौ-दस बजे ज्योंही बैलगाड़ियों में जुते बैलों की चौरासियों और घंटियों की आवाज आई तो बहिन की लड़कियों ने कहा—“मामा मेला देखने चलो।” मुझे मेला-वेला देखना कतई पसन्द नहीं है पर निशा ने जब रोना ही शुरू कर दिया तो छकड़ा तैयार करके हम लोग मेला देखने गये।

खाकरोन का मेला कोई बड़ा मशहूर मेला नहीं है। धसान के किनारे भगवान शंकर का मन्दिर है। नहा धोकर लोग इस मन्दिर में जल चढ़ाने आते हैं और शाम को नौ-दस आने का सौदा लेकर वापिस लौट जाते हैं। मैं वहाँ की परम्परा के अनुसार पहिले बच्चों को शंकर जी के मंदिर में ले गया। मंदिर के दरवाजे के पास ही एक अंधा कह रहा था “एक पैसा दे मेरे मालिक राम !” उसके सामने से निकलते हुए जाने कितने सेठ, मालगुजार और बड़े आदमियों के औरतों-बच्चों की नजरें उस पर पड़ती थीं पर कोई उसे एक पैसा देने का नाम न लेता था। उसी समय एक मालगुजार साहब जो शक्ल से ठाकुर मालूम होते थे, उस भिखारी से लड़े से पड़ रहे थे कि शर्म नहीं आती उसे। हाथी जैसी देह लिए है और मांगता है। काम क्यों नहीं करता ? उषा ने उसके हाथ में एक आना डाल दिया और हम लोग आगे बढ़े। वहीं पर एक माली केले की छाल के टुकड़ों की माला पहिना रहा था। उसने मुझे भी माला पहिनाई। मैंने दो आने पैसे उसको दिये और आगे को चला गया। थोड़ी दूर पर राई हो रही थी। जमाने भर के लुच्चे-लफंगे, भले-बुरे, गरीब-अमीर, आदमी

अच्छे बढ़िया कपड़े पहिने उस जश्न में हाथ बँटा रहे थे। बेड़नी ने ज्योंहि कान पर हाथ रखकर गाया—“तड़पी सारी रात, दो बूँदा रस के लाने” तभी मैंने देखा—वही लम्बी चौड़ी तकरीर देने वाले ठाकुर मालगुजार साहब ने पांच रुपये का नोट उसे दिया और मुस्कराकर मूँछों पर हाथ फेरने लगे। बेड़नी उनसे वह नोट लेकर दूसरे आदमी के पास चली गई। उषा ने कहा “मामा ये तमाशा है, हमको भी दिखाओ।”

“हां बेटी, ये तमाशा है बिल्कुल तमाशा।—इन्सानियत और शराफत का तमाशा, इस तमाशे को हमलोग नहीं देखते, आगे और कोई तमाशा देखेंगे।”

और आगे चले तो देखा, एक पन्द्रह-सोलह साल की खूब-सूरत सी लड़की एक आठ दस महीने के बच्चे को लिए भीख मांग रही थी। चार छै मनचले आदमी उसी के साथ चल रहे थे जो एक दो पैसा देते थे और दो चार आने की मजाक उस लड़की से कर लेते थे। वह लड़की भी किसी को अपनी मुस्कराहट द्वारा और किसी को कुछ एक दो मीठी-मीठी बातों द्वारा धन्यवाद देती चल रही थी। उसे ऐसा करना कुछ जरूरी सा था वरना पैसा उसे कौन देता? लगता है वह वाकिफ थी आज के जमाने के आदमियों की प्रवृत्ति में तभी तो बिना किसी अड़चन के ऐसा करती चली आ रही थी। वह जानती थी कि वह उसकी जवानी का मोल था, गरीबी की इमदाद नहीं।

मेरे साथ बच्चों को देखते ही वह आगे बढ़ी और कहने लगी—“सेठ बच्चे खुश रहें। मेरी इस छोकरी को एक आना पैसा दूध को मिल जावे!”

“तुम लोग कौन हो?” मैंने पूछा।

“मारवाड़ी, सेठ”

“यहां कैसे आई?”

“अरे सेठ, पेट ले आया ...।”

“...हां पेट ही तो लाया है, लुच्ची कहीं की...।” पास में खड़ आदमा न कहा ।

“...लुच्चे होंगे तुम । न खुद दें और न दूसरों को देने दें । इन शरीफ को देखना जरा”—वह कहने लगी और कहती गई ।

मैंने दोनों के झगड़े को टालते हुए एक आना उस लड़की को दिया और उन सज्जन को साथ ले आगे बढ़ा । रास्ते में उन्होंने मुझे बताया—वह मारवाड़ी लड़की उनके पड़ोस में बड़े बाजार में रहती है । वह मारवाड़ की रहने वाली जरूर है पर न तो उसका कोई घरवाला ही है और न वह बच्चा ही उसका है जिसके लिए वह माँग रही है । जाने वह किसका बच्चा है । उसको लेकर वह बाजार में माँगती है । कुछ आदमी उस बच्चे पर दया करके और कुछ उसके चेहरे की नमी देखकर और उसके नाजो-अन्दाज पर मर-गलकर उसे पैसा दे दिया करते हैं । यह एक गुंडे को रखे हुये है । इन पैसों से उसे शराब पिलाती है, सिनेमा देखने को पैसे देती है । उसका सब खर्च उठाती है और जब कभी वह सिनेमा से वापिस शराब के नशे में झुमता आता है तो उसे मार-पीट भी लगा देता है । मुझे ये आदमी बड़ा अच्छा लगा, तभी मैं इन्हें साथ ले और आगे चला । बिल्कुल थोड़ी दूर पर एक अधेड़ सी औरत डिब्बे का सिनेमा दिखा रही थी । “एक आने में बारह मन की नंगी धोवन देखो । भाभी के पाँव से देवर किस तरह काँटा निकाल रहा है उस मजा को भी देखो । पंचम जार्ज और महारानी मेरी देखो” आदि-आदि वह कह रही थी । और जब मैं उस डिब्बे के पास पहुँचा तो देखा वह अंधा जिसे मन्दिर के पास उषा ने एक आना दिया था, डिब्बे पर बैठा-बैठा सिनेमा देख रहा था । मुझे बिजली जैसा ‘शाक’ लगा, यह देखकर और तभी चुप होकर रह गया । लगा—है क्या यह सब ? अंधा आदमी

सिनेमा देखता है। दूसरे के बच्चे को लेकर एक जवान लड़की अपनी शराफत पर हमले कराकर एक लुच्चे आदमी को शराब पिलाती है—क्यों ? बेड़नी की एक नाजो-अंदाज से गाई गई स्वांग की लकीर पर खुश होकर ठाकुर साहब उसे पाँच रुपया दे सकते हैं पर अंधे को एक पैसा नहीं देते। जैसे वह बेड़नी-इन्हीं की सम्पत्ति है, इन्हीं के लिए सारी रात तड़पी है। वाह री दुनियाँ ! मुझे शान्त देखकर निशा बोल उठी—“मामा हम भी सिनेमा देखेंगे।”

“मेरी रानी बेटा, यह हम लोगों के देखने का सिनेमा नहीं है। इसे अंधे देखते हैं, यह अंधों का सिनेमा है।” मैंने कहा।

यह सुनकर वह आदमी मुड़ा और उसने हम लोगों की ओर देखा तथा मुस्कराकर फिर डिब्बे का सिनेमा देखने लगा।

हमने थोड़े आगे देखा—एक आदमी छोटा सा तम्बू ताने उसके दरवाजे पर बैठा, ढोलक बजाकर कह रहा था—“एक-एक आने में आदमी का जी देखो ! देख लो भइया, फिर यह मौका हाथ नहीं आयेगा” मैं आश्चर्य में पड़ गया। बड़ी विचित्र बात है। आदमी का जी एक आने में दिखाता है यह आदमी। आदमी का जी कहाँ से आया और वह भी एक आने में देखने को मिल सकता है क्या ? मुझे बड़ी उत्सुकता हुई उसके बारे में जानकारी की। मैंने अन्दर से देखकर आये हुये आदमियों से सवाल किया—“क्यों भाई आदमी का जी है वहाँ ?”

“हाँ है तो”

“कैसा है ?”

“बहुत बड़ा और बड़ा मजेदार भी।”

और तभी मैं भी आदमी के जी को देखने जानें की जोरों-शोरों से तैयारी करने लगा। पर हिंडोलों को और उसमें बैठों रंग-विरंगे कपड़े पहिने भिन्न-भिन्न प्रकार की औरतों को भोला के गीत गाते हुए देख-सुनकर उषा ने हिंडोले में झूलने को कहा।

उसकी अड़ी देखकर हम लोग हिडोले के पास पहुँचे । पास खड़े देखकर हिडोले वाले ने कहा “आइये लंबरदार हिडोला भूलिए एक पैसे में आठ चक्कर भुलावेंगे ।”

मैंने कहा—“हाँ दोस्त भूलूँगा जरूर पर अभी तो इन आठ चक्करों का ध्यान नहीं है, मैं दूसरे चक्करों में पड़ा हूँ ।”

“हिडोले की सारी पलकियाँ भरी थीं और वे भी औरतों से । मुझे वहाँ खड़े देख सागर के एक मशहूर शरीफ सेठ ने कहा—“अरे आप यहाँ ? यहाँ हिडोले के पास खड़े हैं ? चलिए भी मेला घूमें । ये हम लोगों की चीज थोड़े ही है । शरीफ लोग हिडोलों में भूलते हैं कहीं ? औरतें बैठी हैं, फिर लोग क्या कहेंगे.....?”

मैंने कहा—“अब कुछ भी कहते रहें लोग । वे तो कुछ भी कहते ही हैं, बश क्या है उन पर ? हम किस-किस का मुँह बंद कर सकते हैं और क्या कुछ हो सकता है उससे ? इस तरह हम किस किस की चिन्ता करेंगे ? और जितनी चिन्ता करेंगे लोग हमको और भी चैन न लेने देंगे । तब संभवतः इसी-इसी में हम खत्म ही हो जावें ? भाई साहब इज्जत इतनी छोटी चीज थोड़े ही है कि जो इतने जल्दी बन बिगड़ सकती है । मैं तो मजबूर हूँ—ये बाँचियाँ मानती ही नहीं और तब तुझे तो हिडोले में भूलना ही होगा—चाहे जो कहें लोग, कहते रहें ।”

तब हम लोग हिडोले पर बैठे । मेरे साथी ने मुझे इन शरीफ और शराफत की तकरीर फरमाने वाले सेठ जी के सम्बन्ध का बड़ा भयंकर और दर्दनाक किस्सा बयान किया कि एक बार यही महोदय और इनके तीन और इन्हीं की तरह शरीफ साथी इसी मेले में आये थे और मंदिर के पास वाली उस पानवाली ब्राह्मणी के यहाँ उन्होंने उसकी चटक - मटक देखकर चार आदमियों को पूड़ी बनाने को कहा था । पूड़ियाँ खाकर वे चारों उसी

के यहाँ रात रहे और बीस रुपयों में चारों ने उस औरत के साथ गप किया। पहिला आदमी जब उसके पास से पाप करके लौटा तो उस औरत को चारों आदमियों के लिए दस-दस रुपये के दो नोट दे आया था। उस औरत ने वे दोनों नोट अपनी जेब में रख लिये थे। चौथे थे यही सेठ। जब ये महाशय लौटे तो अपने साथ उसकी जेब से निकालकर वे दस दस के दो नोट भी लेते आये। यही नहीं, वे बड़े प्रसन्न थे अपने इस बहादुराना कृत्य पर और हँस-हँसकर उसे अपने दोस्तों को बतला रहे थे।

मुझे जाने कैसा लगा—जैसे सांप डस गया हो और तभी चक्कर आने लगा। इसीलिये आठवाँ चक्कर खतम होने के पहिले ही हम लोग हिंडोले से उतर पड़े तथा गाड़ीवान से गाड़ी तैयार कर घर लौट चलने को कहा।

मैंने अपने साथी को भी साथ ले लिया, कहा—“चलिये आपको सागर तो जाना ही है रात की गाड़ी से मेरे यहाँ होकर चले जाइयेगा। मेरे आग्रह को मेरे अच्छे दोस्त ने नहीं टाला और वे मेरे छकड़े में बैठ गये।”

“क्या-क्या लाये मेले से गोरे……?” मैंने पूछा।

‘अरे क्या लाये मालिक। हम गरीबों की चीज थोड़े ही है यह मेला-ठेला। फिर हम क्या, कोई भी चाहते तो जाने क्या क्या हैं। पर जब कुछ मिले तब न ? आदमी चाहता तो है सारे जमाने की सम्पदा और सब सुख-पसंदगी की सारी चीजें; पर चाहने ही से क्या है ? खैर छोड़िये मालिक इन बातों को। मैं तो दो आने के सकला और महावरी, दो आने के घुल्ले—बच्चों को कैना, तथा दो आने की भाजी-तरकारी लाया हूँ। आठ आने ले गया था। एक आने में से एक पैसा मंदिर में चढ़ाया, दो पैसे गांव के माली को गजरा पहिनाने में दिये, एक पैसा मंदिर के

सामने के अंधे भिखारी के हिस्से में पड़ा और मालिक एक आने में आदमी का जी देखा.....।”

“अच्छा देखने गये थे तुम आदमी का जी, वह कैसा था ?” मैंने पूछा ।

“अरे मालिक वह भी क्या दिल्लगी थी। तंबू के एक कोने में एक रोटी का टुकड़ा डला था । उसके पास एक आदमी खड़ा-खड़ा हर आदमी से कह रहा था—‘यही तो है आदमी का जी और क्या ? इसके बिना कहीं आदमी जिन्दा रह सकता है ? और मैया सबसे मजे की बात तो है कि जो लोग वहाँ से आदमी का जी-देख कर बाहर आते थे वे लोगों को नहीं बताते थे कि वहाँ रोटी का टुकड़ा डला है, आदमी-वादमी का जी वहाँ नहीं है.....।

मुझे यह सब देख सुन कर जाने कैसा लगा और तभी मेरी बोलती बंद हो गई । सोचने लगा—“यह सब है क्या और सब ऐसा ऐसा ही है क्या ? फिर कभी सुधार होगा इसमें कि नहीं और यदि नहीं हुआ तो फिर इसका परिणाम क्या होगा ?”

मुझे चुप्पी साधे देख मेरे यार ने कहा—“अरे आप तो बड़े गंभीर हो गये । इसमें गंभीर होने की क्या बात है ? दुनियाँ बिल्कुल गंभीर चीज नहीं है और न सोचने की भी । जब आदमी ज्यादा सोचता है सब कुछ भूल जाता है । छोड़िये भी—आप क्या बेकाम की बातें सोचने लग गये । अरे बेकाम ही है और क्या ? और कोई को नहीं भी हो पर हम जैसे लोगों को तो बेकार ही है, जो कुछ सुधार नहीं कर सकते कुछ पा नहीं सकते । भाई साहब दुनियाँ कुछ ऐसी ही है । इसमें हम लोगों को तो हस्ती ही क्या है ? बड़े बड़े लोग जो कुछ करना चाहते थे और कर सकते थे वे भी कुछ नहीं कर सके और खत्म हो गये । पर करना जरूर होगा कुछ न कुछ वरना सब कुछ मिट जावेगा । बात यँ है भाई, कि हमारी समाज व्यवस्था में एक गंदला कीड़ा लग गया है जो उसे गला-

गला कर मिटा रहा है। यदि कुछ नहीं किया गया तो शेष भी धीरे-धीरे खत्म हो जायगा। इसके लिए कुर्बानी देनी होगी बड़ी भारी कुर्बानी। और वह कुर्बानी बेकाम नहीं जावेगी क्योंकि संघर्ष और कुर्बानियाँ कभी बेकाम नहीं जातीं। मेरे मत से न तो अभी इन्सानियत ही पैदा हुई है और न पहिला इन्सान ही। इस भारी परिवर्तन के बाद ही जन्मेगा नया इन्सान, नया समाज और नई व्यवस्था—सब कुछ नया ही नया। और वही होगा हिंडोले का आठवाँ चक्कर। आठवाँ चक्कर अभी बाकी है। वह आयेगा जरूर। जो बिल्कुल नया होगा, नये किस्म का और बिल्कुल नई गेशनी लिए हुए। उसमें तूफान जैसी तेजी होगी, उसमें झूलने वाले और झुलाने वाले एक ही होंगे। जब आठवाँ चक्कर आयेगा तब ये गुजरे सात चक्कर दुबारा न आवेंगे जिनमें धोखा, फरेब, भगड़े-फिसाद, रोटी-रोजी की बातें जिनके दायरे में अंधा आदमी सिनेमा देखता है, औरत अपनी अस्मत् बेचती है और सफेद पोश तथा शराफत और इन्सानियत पर तकरीर देने वाले शराफत और इन्सानियत के डाकू सेंठ हैं। यह आठवाँ चक्कर आखिरी न हो कर पहिला होगा। जो नये आदमी, नई सभ्यता और संस्कृति को जन्मेगा। जिसमें अवाम; नई धरती, नये सूरज, नयी सुर्ख सुबह और जिन्दगी के आठवें तथा नई जिन्दगी के पहिले चक्कर को सलाम करेगा।”

हैवानियत बनाम पैसा

“भई तुम तो समझती ही नहीं कुछ । जाने समझती ही नहीं हो या फिर समझने का प्रयास नहीं करती हो दुनिया की रफ्तार को ? मेमसाहिब पैसा सर्वोपरी है इस खुदाबन्द करीम की दुनिया में । हमसे, तुमसे, शैलेन्द्र से इन्सानियत शराफत सब से ऊँचा । पैसे से तुम, शैलेन्द्र, हम सब भटे के भाव खरीदे जा सकते हैं । तुम कहती हो, जबलपुर गर्मी की छुट्टी की तनख्वाह लेने नहीं जावोगी, तो खावोगी क्या ? महीने की तनख्वाह में मुबलक १६७ रुपया मिलना है और उसका सीधा-सीधा हिस्सा है । ६० रुपया मकान का किराया २२॥ रुपया दूध के, २० रुपया का घी, ८ रुपया धोबी और ५ रुपया बर्तन वाली को एवं ६० रुपया पिछले महीने की उधारी और भी जाने क्या-क्या जो अपने राम को याद ही नहीं है । यदि याद रखने लगूँ तो पागल हो जाऊँ । रघुवीर का एडमीशन कराना है, शैलेन्द्र को गरम कपड़े और इद्रंजीत को सलवार कुरते का इन्तजाम करना है । हमारे-तुम्हारे कपड़ों का तो सवाल ही नहीं उठता । घर में ठीक से ओढ़ने-बिछाने तक के कपड़ों की व्यवस्था तो हो नहीं सकी, जब कि साल भर से हम दोनों लगातार संघर्ष करते चले जा रहे हैं ।

तुम कहती हो, मैं नहीं जाऊँगी जबलपुर । शैलेन्द्र महीने भर से बीमार है, तुममें चलने-फिरने की भी ताकत नहीं है; बीमारी के कारण चक्कर आते हैं और किराये तक को तो पैसे नहीं हैं । फिर भरोसा ही क्या कि वे लोग तनख्वाह दे ही देंगे गर्मी की, जब २० चिट्ठियाँ उन्हें आफिशियल और घर लिखी जा चुकी हैं और उन लोगों ने एक का भी उत्तर देने की कृपा नहीं की । तुम्हारा भी कहना गलत नहीं है, पर उन्होंने गर्मी के पहिले तुम्हें नोटिस भी

नहीं दिया था, तनखाह क्यों न देंगे ? फिर वहाँ अपने नाते-रिश्तेदार स्कूल की कमेटी में हैं सब व्यवस्था हो जावेगी तुम पहुँच भर तो जाओ वहाँ। जाने के लिये मैं रुपयों की व्यवस्था किये दे रहा हूँ और वहाँ से आने के लिये तुम्हारे पास तनखाह के रुपये रहेंगे ही। ठंड बैरिन भी सारी दुनिया के साथ गरीबों को ही सताती है। पानी गिरने से आजकल ठंडक ज्यादा है। अच्छा, शैलेन्द्र को गरम बनयान लाये देता हूँ।

तुमने फरमाया, मुझे तुम पर दया नहीं आती, तो मैं कहूँगा तुमको जाने मुझपर क्यों दया नहीं आती ? आज की यह सीधी-सादी दिखनेवाली दुनिया बड़ी विचित्र है, महारानी जी। संघर्ष का युग है यह। यहाँ एक आदमी दस आदमियों को समाप्त करके, जिन्दा रहना चाहता है, जिन्दा रहने की खाहिश रखता है, तभी तो उसे जीने में मजा आता है, जिन्दगी कुछ दिखती है। यहाँ रोटी मिलती नहीं रानी जी, दूसरे के हाथ से छीनना पड़ती है। तभी हम जिन्दा रह सकते हैं और यदि तुम्हें जीने की खाहिश है तो फिर यही करना पड़ेगा। यहां मैट्रिक एम० ए० पर, अयोग्यता-योग्यता पर शासन करती है। दैवानियत इन्सानियत से जिना करती है और भी जाने क्या-क्या होता है...? आप समझती हैं नत्थूमल स्कूल का मैनेजमेंट आपका अधिकार होने पर भी आपके घर रुपया दे जावेगा ? राम का नाम लीजिये, ये बातें ईसा से २० वीं शताब्दी पहिले की हैं। आज दुनियां कितने आगे बढ़ चुकी है। ऐसा भी कहीं होता है ? तुम्हें यहां उनके सिर पर बैठकर ही रुपये मिलने की उम्मीद करना चाहिए। यदि इतना माहदा है तो ठीक वरना घर ही बैठने में फायदा है। तुम सोचती हो हम लोग आराम करने को, सुख भोगने को पैदा हुए हैं। नहीं बिलकुल नहीं हम तो बस लड़ने-भिड़ने और मरने को ही बनाये गये हैं। हमें लगातार संघर्ष करते रहना है और मर जाना है। इतना ही नहीं, फिर मरकर

—जीना है। संघर्ष पूरा करने को। और चाहो तो विश्वास कर लो कि वह दिन जरूर आने को है—अपनी जिन्दगी में ही, जब हमारा शैलेन्द्र कमलाकर से कहेगा “चाचा” बाबूजी चल बसे हैं, आपको तीन-चार रुपयों का कफन लेकर उनका अंतिम संस्कार करने चलना है। अब तुम सोच लो, तुम्हारी मर्जी है जो तुम्हें करना ठीक लगे—करो। मैं तो १५० रुपया का मोह नहीं छोड़ सकता। एक सौ पचास में कितनों की रोटी जीवन और आवश्यकतायें निहित हैं’ रानी जी, इसे तो जरा सोचो !”

तुमने यह भी कहा कि यह तो आदमी की योग्यता है। जो जितना डिजर्व करता है उतनी उसे अपेक्षा करनी चाहिये। मैं उसे बिल्कुल नहीं मानता। तो क्या इतना पढ़—लिख जाने के बाद संघर्ष और तकलीफ के पश्चात् मैं दो बार का रुखा-सूखा भी डिजर्व नहीं करता हूँ ? मैं ये कब कहता हूँ कि मुझे सत्ता हासिल हो, मैं कार पर चलूँ और पैदल चलने वालों को कुचलूँ ? मेरी तो उन कार पर चलने वालों से बस इतनी ही इल्लिज्जा है कि अय मेरे कार वाले और ऊँची तकरीर वाले आकाओ तुम्हें तुम्हारा सब कुछ मुबारिक हो। मुझे सिर्फ तुम्हारी कृपा और आशीर्वाद से दो बार रुखी-सूखी मिलती रहे और मैं जिन्दा बना रहूँ। तुम इस अधिकार भर से मुझे मरहूम न करना। मुझे तुमसे कोई गिला या शिकवा नहीं, यदि मुँह खोलूँ तो जीभ काट लेना...!

अंतिम निवेदन तुमने किया कि तुम बीमार हो कहीं मर ही न जाओ रास्ते में...! राम का नाम लो, हम लोगों को कहाँ मौत आती है ? गरीबों को मौत भी हिकारत की नजर से देखती है। फिर बिना तकलीफ भोगे मर कैसे जाओगी ? तुम्हें मुसीबतों का जो कोटा तै हो चुका है पूरा करना ही है। और फिर मरोगी कैसे, १५० रुपया तो मिलने वाले हैं उससे तुम ही तो क्या, जाने कितने आदमियों को जिन्दा रखा

जा सकता है ! रही मेरे साथ जाने की बात, सो अपने राम को तो मरने तक की फुरसत नहीं है । जाना तो तुम्हें अकेले ही पड़ेगा । मुझे जानती ही हो, सेठ अभिनंदन ग्रंथ में लेख देना है, चार रोज के भीतर ही । लो फिर वही बात आ गई । तुम तो कहती हो—मैं बक वाम करता हूँ और या तो पागल हो ही चुका हूँ या फिर होने वाला हूँ । तभी तो सब चीजों को 'इन टर्म्स आफ मनी' ही लेता हूँ और इन्सानियत शराफत को पैसे से नीचा 'देखता हूँ ! तो कहूँगा—देवी जी इन्सानियत शराफत कोई चीज नहीं है ! आदमी, शराफत, रिश्ता, बाप-बेटा और पति-पत्नी कुछ नहीं है । जो कुछ है वह पैसा ! अभिनंदन होता है सत्ता का, बड़प्पन का, पैसों का, साहित्य साहित्यिक और इन्सानियत का नहीं ! यह रवैया अनादिकाल से चला आ रहा है और चलता रहेगा । कोई कुछ सुधार नहीं कर सकता और न इसमें सुधार होने की संभावना ही है कुछ । लेख नहीं दूँगा तो बस कल से भूखा मरना पड़ेगा ! यदि नौकरी करने की खाहिश है तो चार रोज के भीतर ही अपना सारा काम बंद कर और भूखा रहकर यह करना पड़ेगा, भले ही उम्रलों के खिलाफ हो, आत्मा साथ न दे रही हो । पैसे से बड़े थोड़े ही होते हैं उसूल और आत्मा ।

लम्बी चौड़ी तकरीर फरमाकर मैंने अपनी बीमार पत्नी को जबलपुर जाने को तैयार कर तो लिया पर मेरी आत्मा ऐसा करते समय मेरा साथ बिल्कुल न दे रही थी कि मैं उसे अकेली जबलपुर इस भीषण वर्षा में १॥ माह के बीमार बच्चे के साथ भेज दूँ । पर फिर सोचता हूँ—कितनी जरूरतें हैं, कितनी उधारी देना है । कुछ हलका हो जाऊँगा । और तभी १५० रुपया ने सब पर विजय पाई । मैंने तय कर लिया, अपनी पत्नी को जबलपुर भेजने का और पैसा न होते हुए भी तैयारी में जुट गया । आठ रोज प्रयत्न करते-करते गुजर गये पर रुपयों की कोई व्यवस्था न

हो सकी। इतनी भीषण वर्षा हो रही है। शैलेन्द्र को गरम कपड़ों का इंतजाम करना है। उसको ठीक से सूती कपड़े भी तो पहिनने को नहीं हैं, लोग क्या कहेंगे? और रानी को भी तो.....? खैर अभी छोड़ो रानी की बात। पर बच्चे की दवा, गरम कपड़े और एक तरफ का किराया यह सब तो जरूरी है ही।

आखिर गाड़ी का समय हो गया और मैं कुछ न कर सका। १६७ रुपया का गुलाम, मेरी क्या बकता, मुझे कौन रुपये देगा और क्यों मुझ पर कोई विश्वास करेगा? भाग्य से कमलाकर आ गया और उसने कहीं से २० रुपयों की व्यवस्था कर दी। मैं कुछ न कर सका, इतने समय में बस पत्नी को स्टेशन ले जाकर थर्डक्लास के डिब्बे में बिठाल सकने का पौरुष पैदा कर सका।

आज दस बजे मेरी रानी, शैलेन्द्र और सबसे बड़ी चीज एक सौ पचास रुपया मुझे मिल जावेंगे। सुबह में प्रसन्नता का ठिकाना नहीं है। चलो दो रोज की तकलीफ उन लोगों को हो गई पर १५० रुपया तो हाथ लग गये। सब जरूरतें पूरी हो जावेंगी बैठने को दो चार कुर्सियें ही बनवा लूंगा। खाटे भी लेना है, कपड़े लत्ते, रघुवीर का मारेस कालेज में एडमिशन, बच्चे को और उनको दवा-फिर टानिक, 'रोटी—रोटी—रुपया, रोटी रुपया—रुपया।

और ये आई गाड़ी। सोचता था, पत्नी मुस्कराती हुई दरवाजे पर खड़ी दिखेगी और चट से १५० रुपया हाथ पर रख देगी। पर क्या, लेडीज कम्पार्टमेंट में तो सुनसान छाया था। मैं उस तरफ बढ़ा। देखा दो तीन स्त्रियाँ बड़ी साधारण तरह से नीचे उतर रही हैं और एक स्त्री डिब्बे में अपने बच्चे को सीने से चिपटाये बेंच पर डली है। वही थी मेरी बीबी। मैं जोर से चिल्ला पड़ा—रानी। पर क्या, रानी तो बेहोश थी और बच्चे को भी जाने क्या हो गया था.....?

स्ट्रेचर पर जब मेरी पत्नी निकली तो टिकिट कलेक्टर ने टिकिट माँगा, पर पर्स में टिकिट कहाँ, सिर्फ एक आना था।

और मेरी नौकरी छूट गई

मेरी नौकरी जो मुझे बड़ी मेहनत के बाद मिली, जिसके लिए मैंने अपने आत्म सम्मान को नीलाम किया, प्रिन्सपल्स की होली जलाई; अपने स्वजनों, ७० वर्ष की बूढ़ी माँ, ५५ वर्ष की लूली विधवा बहिन और उसकी अनाथ लड़की को भगवान भरोसे छोड़कर ५०० मील दूर आया। जिस नौकरी के लिए मेरे जन्म से ही मेरी माँ साल भर में ८ महीने का उपवास करती, मान्यतायें रखती और दान दक्षिणा देती आई थी और जो दिन मुझे और उसे पूरे ३० वर्ष ३६० महीना और १०६५० दिनों बाद देखने को मिला था। मेरी नौकरी की खबर पाकर माँ की आँखों में मानो फिर से रोशनी आ गई, बहिन का पैर जुड़ गया और उसे महसूस हुआ कि वह विधवा और अनाथ नहीं है। क्योंकि उसके एकलौते भाई को ३० साल की उम्र में एम० ए० पास करने के बाद, ४-५ वर्ष भटकने के बाद ही तो नौकरी मिल गई।

मेरे दोस्त, मेरी कोई सुनता तो है ही नहीं। न अफसर ने सुनी इससे नौकरी छूट गई और न आप लोग सुनते हैं, इसलिए कहते हैं धूर्त, कामचोर बातूनी और बेवकूफ है। कुछ आता-जाता नहीं है, काम करने का माहदा ही न था और न योग्यता थी तभी तो नौकरी छूट गई और लगा है अफसर को दोष देने। पर सुन तो लीजिये, चाहें तो विश्वास कर लीजियेगा। वैसे आपकी मर्जी है।

हाँ मैंने सिर्फ इतना ही तो कहा था कि साहब वर्क डिस्ट्रीब्यूशन का अव्वल तो तरीका गलत है और यदि करते भी हैं तो न्याय-पूर्ण ढङ्ग से करिये और बराबरी का काम बाँटिये। पर उनका

दिमाग बिगड़ गया। उन्हें ऐसी बातें सुनने की आदत कहाँ है और मुझे इन बातों को कहने का अधिकार ही भला क्या है? फिर ऐसी बातें वे सुनने लगे और उन पर अमल लाने लगे तो दफ्तर का डिप्टी-मैनेजर बिगड़ेगा। लोग हड़ताल और क्रांति के लिए आमादा होंगे और तब उनकी अफसररी कैसे, किस पर चलेगी? उस अफसररी और अपनी सत्ता को कायम रखने के लिये वह कुछ तो भी कर सकते हैं—कह सकते हैं जो संभवतः उन्हें न करना और न ही कहना चाहिए। तभी उन्होंने फरमाया “तो...तो आई आर्डर यू टू एक्सेप्ट दिस प्रोग्राम.....।” अब करिये आप क्या करते हैं? यदि अब भी स्वाभिमान की चिन्ता है तो ये गई नौकरी और बावनगंडे खड़े हैं मुझे जैसे उसके लिए मुझे भले ही अपनी कोई चिन्ता न हो, खाने पीने की और न पहिनने ओढ़ने की ही, पर सबसे बड़ी समस्या मेरे सामने जो है, वह है अपनी बीबी, माँ, बहिन और उसकी लड़की के दो बार नहीं तो एक बार के रखे-मूखे भोजनों की। यदि इतना भी कर सकने का पौरुष मुझ में नहीं है तो फिर जुम्मा तालाब का रास्ता देखना चाहिये। वहीं शायद कुछ राहत मिल सके। पर मेरे दोस्त, मरने पर भी आत्मा को शान्ति न मिलेगी जब ये चार प्राणी रोटी के समय कोसेंगे तथा मुझे बुजदिल और निकम्मा करार देंगे। तभी मैंने स्वीकृति के हस्ताक्षर करते समय यह जरूर कहा “साहब कब तक आर्डर करके काम कराते रहेंगे? हम लोग इन्सान हैं, हमारे बीच यदि कोई भी परम्परा कायम हो सकती है तो वह इन्सानियत की, न्याय की, अन्य नहीं।” इस हिमाकत से संभवतः साहब बहादुर को गुस्सा जरूर आ गया होगा पर उन्होंने उस समय कहा कुछ नहीं।

मेरा दूसरा अपराध है कि मेरा इकलौता नवजात शिशु हमेशा बीमार हो जाता है और उसकी दवा की व्यवस्था के लिए मुझे

जब कभी छुट्टी लेनी पड़ती है। साहब का कहना है कि वह क्यों बीमार हो जाता है और यदि बीमार होता है तो दवा की व्यवस्था में १०॥ बजे सुबह के पहिले और ५ बजे शाम के बाद क्यों नहीं करता या फिर मेरी पत्नी ही बीमारी के कारण चल फिर या बोल भी नहीं सकती, दवा का इन्तजाम क्यों नहीं करती ? साहब का लड़का बीमार होता है तो वे कभी दवाखाना नहीं जाते, उनका नौकर ही चला जाता है। “साहब कहते तो कुछ ठीक ही हैं, पर क्या करूँ मेरा तो सिर फिर गया है, तो भी मैं जो कुछ आपको कह रहा हूँ ?”..... इसी तरह एक दिन मेरा दो माह का बच्चा बहुत बीमार था। मैंने अफसर में छुट्टी माँगी, एक घंटे की ही, अस्पताल जाने को, तो साहब ने यह तर्क पूर्ण बहस छेड़ दी।

‘आपका बच्चा कब से बीमार है.....?’

मैंने कहा—‘कल से’।

‘कल शाम को आप उसे अस्पताल क्यों न ले गये.....?’

‘पैसे पास न थे।’

‘आज कहाँ से आ गये ?’

‘अपनी कुछ कीमती पुस्तकों को बेचकर.....’।

‘तो.....तो क्या आप शाम को अस्पताल नहीं चले जावेंगे?’

‘साहब, दो महीने का बच्चा और उसकी बीमारी.....’

‘.....शाम तक जाने.....?’

‘.....मैं असमर्थ हूँ। जरूरी काम है उसे आज ही समाप्त होना चाहिये। आप लोग दफ्तर को बनिया की दुकान बनाये हैं। घर के कार्य को प्रमुख और दफ्तर के काम को गौण समझते हैं। जानते नहीं हैं उसी काम के परिणाम स्वरूप आपको रोटी मिलती है। आपका पेट पलता है और उसी के लिए इतनी बहानेबाजी और आनाकानी ? फिर यदि

समय पर काम न होगा तो मेरी क्या 'पोजीशन' रहेगी ? आप मेहरबानी करके काम करिये और उसे खतम करके ही घर जाइये ।'

मेरे कलेजे पर जैसे हजारों लाखों साँप लोट गये । घर पर कोई नहीं है । मैं अपनी पत्नी से कह आया हूँ कि १० बजे जरूर ही अपने बेटे को अस्पताल ले जाऊँगा ! वह जज हालत में है कैसे चली जावेगी अस्पताल, बच्चे को लेकर ? और फिर पैसे तो मेरे पास में हैं, कैसे क्या होगा ? मैं अपनी कुर्सी पर आकर बैठ गया । कलम उठाई पर काम करने को जी ही नहीं होता था । शाम तक काम खतम करना है, चाहे मुझमें क्षमता हो या न हो ? और अब मेरी आँखों के सामने बार बार मेरा बच्चा..... बीमार, दो माह का बीमार बच्चा और रुग्ण दुर्बल बीबी आ जाती थी तथा मेरी आँखें बंद हो जातीं । मुझे लगता जैसे मैं कक्षा पर नहीं अपने मस्तक पर और अपने कलेजे पर कलम घिसाट रहा था । उंगलियाँ जैसे बेकार, बेजानदार हो गई थीं, तभी बार-बार कोशिश करने पर भी कलम गिर जाती.....। हाय राम रे मेरा बच्चा कैसा होगा ? मेरी पत्नी मेरी बाट देख रही होगी और साहब.....? "मेरे कानों में बार-बार मेरी लाड़ की रानी के ये शब्द गूँज रहे थे..." आओ न जल्दी से अपना बेटा बीमार है उसे अस्पताल ले जाना है । बड़े निर्दयी हो । मेरा तो खैर तुम्हें ध्यान नहीं रहता, अपने बेटे का ही खयाल करते.....। और...और तभी मैं कलम को वही फेंककर, दफतर बंद होने के आध घंटे पहिले ही घर भाग गया ।

ये साहब लोग भी जाने किस धातु के बने होते हैं उनमें दिल या जजबात भी होते हैं या नहीं, भगवान जाने ? ये सिर्फ इसीलिये साहब हैं कि इनकी बड़े लोगों पर पहुँच है, मिनिस्टर से रिश्तेदारी

है, भले ही योग्यता और शिक्षा में मुझसे कम या मेरे ही बराबर हैं। पर इसे कौन पूछता है। बस बात इतनी है कि वे अफसर हैं और मैं उन्हीं के दफ्तर का गुलाम। कोई बड़े पद या तरकी का मौका आवेगा तो ऊपर से कोई गधा पूँछ काट कर भेज दिया जावेगा और मैं टापता रह जाऊँगा क्योंकि मैं किसी भले आदमी का संबंधी या मित्र कहा हूँ ?

दूसरे दिन मुझसे स्पष्टीकरण माँगा गया और कहा गया कि क्यों न मुझे नौकरी से अलग कर दिया जावे ? दूसरे लोगों ने मुझे साहब से अपनी गलती महसूस कर क्षमा-याचना करने की सलाह दी। पर मुझसे यह न हो सकता था। मैंने कहा “मेरी गलती ही क्या है जो क्षमा माँगू ? और कौन सी बात अस्पष्ट है जिसका स्पष्टीकरण करूँ ?” साहब ने मेरा यह रवैया देखकर मुझे दफ्तर से निकल जाने का आदेश दिया। मैं दुख, गुस्से और आत्म-ग्लानि में दबा मरा घर की ओर भागा।.....सोचा चलो अब रोज रोज की इस खिंट-खिंट से छुट्टी मिली। नीचों से पीछा छूटा। अब शांति से अपने बाल-बच्चों के बीच बैठेंगे, उनका दुख-दर्द सुनेंगे अपनी तकलीफ कहेंगे, कुछ जी हलका होगा। घर चला जरूर जा रहा था पर पैर जैसे आगे नहीं बढ़ रहे थे ? रानी बीमार है—मुन्ना की स्थिति चिंताजनक है ? इनके इलाज कराने को अब पैसे कहाँ से आवेगा ? हे भगवान ! जिनके पास दवा कराने को पैसे नहीं होते वे बीमार क्यों हो जाते हैं ? खैर इसे भी छोड़ो। सब से बड़ी बात है, अब कल से रानी, माता जी, बड़ी जीजी और मुन्नी को खाने की व्यवस्था कैसे होगी ? मकान किराया देना है और भी जाने कितना कर्ज है, क्या क्या लेना है और किसको कितना देना है... ? खैर यह सब तो गया भाड़ में, पर भोजन-खाना, खूबी-रोटी ही सही, माँ, रानी, बड़ी जीजी, मुन्नी

और मुझे...? बिना रोटी के हम जिन्दा कैसे रहेंगे—संघर्ष कैसे करेंगे-भली बुरी कैसे सुन सकेंगे ?

और तभी मैं एकदम लौट पड़ा.....।

“मेरी नौकरी रहने दीजिये । मुझे नौकरी से अलग न करिये, हम खावेंगे क्या, जिन्दा कैसे रहेंगे ? मेरी माँ, रानी, बड़ी जीजी और मुन्नी का क्या होगा.....? मैं आपसे क्षमायाचना करता हूँ और लिखकर दिये देता हूँ, ऐसी गलती भविष्य में कभी नहीं होवेगी । गरीब-परवर मुझे एक मौका और दीजिये...मुझे काम करने दीजिये । मेरे...दो महीने के बीमार बच्चे पर तरस खाकर मुझे पनाह दीजिये, साहब मैं आपके पैर पड़ता हूँ...”

और तब मेरा सम्पूर्ण आत्मसम्मान, इज्जत, योग्यता, ईमान-दारी और भलमनसाहत, सत्ता और पैसों के कदमों में लोट रही थी ।

सिगनल्स डायरी

उन दिनों मैं दुर्भाग्यवश या सौभाग्यवश सिगनल्स में १३० रुपया माहवार पर सिविलियन इन्स्ट्रक्टर का काम कर रहा था। हाँ, दुर्भाग्य ही तो था जो रिसर्च का काम छूटा नहीं तो फिर क्या...? घर छूटा, अपने कहे जाने वाले लोग छूटे और यह निगोड़ी रोटी कहाँ से कहाँ ले आई कि मैं १३० में यहाँ बिक गया। सौभाग्य मैं इसे इसलिए समझता हूँ कि आखिर कहीं सहारा मिला तो ! कितनों को तो यह भी मुअस्सिर नहीं होती। चौबीस घन्टे में दो नहीं एक बार ही सही, रूखी-सूखी मिलने का निश्चय तो हो गया वरना क्या, हम जैसे बावन गंडे चक्कर लगाते हैं, किसको किसकी चिन्ता है ?

इस सबके बावजूद भी मुझे यह काम बिल्कुल ही पसन्द नहीं था। आदमी की जिन्दगी में कई चीजें ऐसी भी आती हैं जिन्हें जरूरत होने पर भी वह पसन्द नहीं कर पाता ! ऐसा ही हाल कुछ अपने राम का था। भले ही यह नौकरी मुझे वरदान बन कर आई थी फिर भी...। खैर इसको अब यहीं छोड़िये। कहने का तात्पर्य यह कि मुझे यह नौकरी अच्छी न जंचती थी। या तो मैं इसके योग्य न था या फिर यह नौकरी मेरे लायक न थी। जो भी हो, पर था जरूर कुछ न कुछ अवश्य। तभी ढकेल रहा था काम को—जिन्दगी को—ढकेल कर—धक्का देकर आगे बढ़ाने, जिन्दा रहने को। आखिर जिन्दा तो रहना ही था—अपने लिए नहीं तो दूसरों के लिए ही सही। कहने को तो वह सगस्वती का मन्दिर था जिसका जर्ज-जर्ज मेरे लिए पूज्यनीय होना चाहिये पर अपने राम को कुछ न जँचता। वहाँ के वातावरण में वह चीज ही न थी जो मुझे आकर्षित कर सकती या शान्ति दे सकती। भाग्य से

कुछ ऐसे विचित्र और बुरे लोग मेरे सहयोगी थे जो मुझे परेशान किये बिना दम न लेते और मेरा जीना दूभर किये थे। पर मैं कैसे तो भी गाड़ी चलाये जा रहा था। दफ्तर पहुँचते ही एक अकेला मुँह पर सवाल रहता—‘छुट्टी कब है’—? मेरा जी ही नहीं लगता। मेरी इस हरकत से मेरे तथाकथित साहब लोग मुझसे बड़े अप्रसन्न रहते और मुझे यू० यस० याने अन सर्विसेबिल भी कहने लगे थे। ठीक है भाई कहो जिसको जो जी में आये, सर आँखों पर है—सब कुछ, आपका कहा सुना। दफ्तर के सारे काम में मुझे आर्मी फर्स्ट क्लास और हिन्दी सी कक्षा पढ़ाना भर पसन्द था। आर्मी फर्स्ट हिन्दी, वहाँ की सर्वोच्च कक्षा थी और हिन्दी ‘सी’ अहिन्दी भाषा-भाषियों की क्लास थी। उन कक्षाओं के कई मेरे छात्रों के नाम सदैव मेरे मुँह पर रहते और उनके बीच रहना भी मुझे बड़ा पसन्द था।

तभी आज जब मुझे मेरे काम के अलावा हिन्दी सी पढ़ाने को कहा गया तो मैं प्रसन्नतापूर्वक उस कक्षा में गया भले ही वह कक्षा भवानी सींग महाराज की थी जो नीचातिनीच थे और जिनसे मुझे दिली नफरत थी। लेनी की टेबिल पर सिगनल्स डायरी’ को देख कर उसकी अनुमति की परवाह किये बिना ही मैंने शिवरात्रि की छुट्टी देखने के लिए डायरी को उठा लिया। पराये खत उनके हाथ में देते-देते पढ़ लेना और दूसरों की डायरी को छुप-छुपकर पढ़ना अपनी पुरानी आदत है। यह चीज बुरी है पर फिर भी मेरी यह आदत नहीं छूटती भले ही लोगों की भली-बुरी सुन लेता हूँ। तो ज्योंही डायरी के पन्ने मैंने पलटना शुरू किया, लेनी बोला—

‘...सर कायन्डली डू नाट...भाई प्राइव्सेसी...।’

‘...ओह वेरी सारी...’ डायरी देते हुए मैंने कहा... ‘अच्छा कापी खोलो डिक्टेसन दूंगा’—बात बदलते हुए मैं बोला। ‘...हां, पहिले सुनो मैं बोलूंगा फिर तुम लोग लिखना.....’

...तो कल शिवरात्री है। इस दिन भगवान शंकर का विवाह जगत जननी उमा से हुआ था। शिवरात्री इसी का स्मृति दिवस है। महादेव जी की आज्ञा का उल्लंघन कर जब सती राम की परीक्षा लेकर जौटी तो उन्होंने उन्हें 'माता सीता' कहकर अपनी पत्नी मानने से इन्कार कर दिया। जब सती बड़ी दुखी हुई तब शंकर ने उन्हें दूसरे जन्म में पति रूप में स्वीकार करने का वरदान दिया भगवान नीलकण्ठ ध्यानस्थ हो गये। पिता के घर आमंत्रित न होकर भी यज्ञ में कूदकर अपने पति के अपमान का बदला लिया अगले जन्म में राजा हिमाचल के यहाँ उमा बनकर महादेवी सती आईं। गिरजा ने शंकर को पाने के लिये बड़ी कठिन तपस्या की और भावना में सब कुछ भूलकर पेंडों के फूल-पत्तों खाना शुरू कर दिया। भोलेश्वर ने प्रशन्न होकर उन्हें पत्नि रूप में स्वीकार किया और उनका विवाह इस दिन सम्पन्न हुआ। कहते हैं — तपस्या के दौरान में पार्वती द्वाग खाई गई चीजें बेलपत्री, धतूरे का फल-फूल, शंकर की प्रिय वस्तु बनीं।'

‘.....सर, क्या स्त्री पुरुष को इतना प्यार कर सकती है जितना महादेवी सती ने.....।’ बीच में ही लेनी बोला।

‘.....स्त्री पुरुष को न चाह सकती हो पर पत्नी पति को तो ...। लेनी, मैं यहाँ साधारण स्त्री पुरुष की नहीं बल्कि पति पत्नी की बात कह रहा हूँ। तुम जाने कौन सी दुनियाँ में रहते हो?’

‘.....आई डू नाट एग्री विद दिस सर.....। सर, आप उस समय तो जरूर ही बुरा मान गये होंगे मुझे क्षमा करिये। आप इस, डायरी को ले जाइये और पूरी पढ़ डालिए। फिर आप क्या कहते हैं मैं इसके सुनने के लिए उत्सुक रहूँगा। मेरी आपसे प्रार्थना है, इसे किसी को बताइयेगा नहीं। वैसे आपकी मर्जी है...। और अब बचा ही क्या है? जो विगड़ना था सो विगड़ ही गया।

सर, मेरी जिन्दगी बड़ी काम्पलीकेटेड सी है, कुछ और बहुत ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों से आई है। मैं उस जिन्दगी से काफी आगे बढ़ गया हूँ जब जिन्दगी कुछ नहीं बस प्यार ही का दूसरा नाम था पर अब तो मुहब्बत जिन्दगी की लम्बी-चौड़ी सड़क के आस पास चलनेवाली उलझी हुई कटीली पगडंडी है.....। खैर छोड़िये भी सर, कहाँ की बात चल पड़ी। मैं...मैं बहुत तो कोशिश करता हूँ पर क्या करूँ इस दिल को... ?

“.....राहेरू मिलते हैं पल भर को बिछड़ जाने को।

फिर भी जाते हुए कुछ अशक ढलक जाते हैं...।”

और जिया की उपरोक्त पंक्तियों के साथ ही साथ मैंने उसकी बड़ी-बड़ी बेहतरीन आँखों में आँसू छलके भी देखे.....।

उपरोक्त बात को आगे न बढ़ने देने के लिए मैंने डिक्टेशन देना शुरू कर दिया। पर मुझे वह भी न हो सका और मैं समय से पहले ही क्लास छोड़कर चला गया—इन्स्ट्रक्टर रूम में। पर जब वहाँ भी चैन न मिल सकी तो अफसर से छुट्टी लेकर घर आया। लेनी के विश्वास को धक्का न लगे तभी मैंने किवाड़ों को बंद किया और डायरी पढ़ना शुरू कर दिया।

“.....मैं लेनी ई. हेक्टर हेकेट भाँसी का रहने वाला हूँ। मेरे पिता श्री सेम्पसन क्रिस्टिफर हेकेट गेरीसन इंजीनियर हैं। मेरी माँ बचपन में ही मर चुकी है। पिता जी ने मेरी स्नेहमयी माँ के देहावसान के थोड़े दिनों बाद ही एक काफी जवान स्त्री से शादी कर ली। उनका व्यवहार मुझसे ठीक वैसा ही है जैसा आम तौर पर सौतेली माताओं का हुआ करता है। दिन में हजार जली-कटी कहकर मुश्किल से दो बार सुखी-सुखी देना यही क्या कम था माँ के मरने के बाद मुझे दो बजे रात के पहिले लौटना अच्छा ही नहीं लगता था और मेरी नई मामा को यह सब बिल्कुल नाप-

सन्द था। छुटपन से ही विधाता का कुछ ऐसा प्रकोप रहा कि प्यार भी कोई चीज है—यह जानने का अवसर ही न मिला। माँ मरी तो डेडी ने मेरी ओर से मुँह ही मोड़ लिया। तभी मैं मृग-तृष्णा की भाँति प्यार की खोज करता, शायद कहीं कुछ मिल जावे ? और मैं टकरा गया। ईसाईयों में कजिन और सिस्टर-ब्रदर का रिश्ता भी बड़ा विचित्र होता है। सारे गंभीर रोमान्स इन्हीं संबंधों के बीच ही आपको मिलेंगे। सिस्टर, ब्रदर कहते-कहते ही शादी हो जाती है और फिर भी यह संबोधन जारी रहता है। मेरी जिन्दगी बड़ी ड्रेमेटिक ढंग से चल रही है। इसी तरह शेरली और मेरी मित्रता का प्रारंभ भी बड़े नाटकीय तरीके से हुआ। उस दिन शेरली का बर्थ डे था। मैं पार्टी में अपने पिता के बहुत कहने-सुनने पर भेंट के लिए एक सफेद रंग का श्रृंगार दान लेकर गया। शेरली में कलर-प्रज्यूडिस था इसलिए वह मुझसे नफरत करती थी। वह एक बड़े सभ्रांत ईसाई परिवार की लड़की थी, तभी उसका टेम्प्रामेंट काफी एंग्लोइंडियन टाइप का था। मुझे वह बहुत असह्य, और पार्टीमेनर्स से अनभिज्ञ समझती थी। डिनर में डिनर केक उसने मेरे सामने नहीं रखा, और मैं सारे समारोह में हँसी का कारण बना। पर जब उसने मेरी भेंट उस श्रृंगारदान को उठाकर फेंक दिया तब मैं आपने आपको न सँभाल सका और गुस्से में उसे एक तमाचा रसीद कर दिया। तब क्या, लड़ाई-झगड़े पर नौबत आ गई। झगड़ने वाले महानुभाव शेरली के एडमिरर्स तो थे ही इससे उसके कहने पर फौरन शांत हो गये। मैं अपने गम को गलत करने अपनी एक अन्य महिला-मित्र के साथ लगे हुए कमरे में प्यानों पर गाने लगा। वहाँ भीड़ लग गई और सब के साथ शेरली पर भी मेरी योग्यता की छाप बैठ गई तथा शेरली उस रोज से मेरी कुछ न होकर भी सब कुछ हो गई। मैं शेरली को प्यार करने लगा। इस तरह

प्यार न पा सकने की कमी, कुछ-कुछ किसी तरह पूरी होने लगी और मैं सौतेली माँ के दुर्व्यवहार की लपटे शेरली के प्यार की ठंडी थपथपाहट से भुलाने की कोशिश करने लगा। जब कभी ज्यादा बेचैन होता तो शेरली की गोद में सिर रख लेता। शेरली सिर को सहलाती, सफेद बाल निकालती तो ऐसा लगता कि कह नहीं सकता कि कैसा लगता? मुझे बड़ा सुख मिलता और मैं अपनी माँ के स्नेह को याद करके ही संतुष्ट हो जाने की कोशिश करता। मुझे लग रहा था जैसे मेरी उम्र आगे नहीं बल्कि तेजी से पीछे भाग रही है। शेरली खूबमूरत थी और चतुर भी। नेट में कैद उसके सुनहले बाबड हेयर, बड़ी-बड़ी गहरी कजरारी डूब सकने लायक आँखें और भी जाने क्या-क्या कि अब कुछ याद ही नहीं आता कि क्या क्या?

हम लोगों ने तय कर लिया—सीनियर केम्ब्रेज के बाद दोनों शादी कर लेंगे। कुछ ऐसी परिस्थितियाँ आई कि मैं सीनियर केम्ब्रेज के बाद २५० रुपया माहवार पर रेलवे में नौकर हो गया। शेरली पढ़ती रही और किसी न किसी कारण शादी टलती गई। ईश्वर को जाने क्या मंजूर था? इस मंसूबे के पूरा होने के पहिले ही शेरली गर्भवती हो गई और उसके लड़का हुआ। मुझे इस सबसे कुछ डर न लगा, कारण उन दिनों मेरे पास बहुत पैसा था और जब पैसा था तो सब कुछ था। मैं कुछ भी कर सकता था ऐसा होने और इतना कुछ करने के बावजूद भी मेरी ओर किसी को उँगली उठाने की तो क्या, बात भी करने की ताब न हो सकी। किसी को इस चीज की जानकारी भी न होने पाई। हो भी गई हो पर किसी के मुँह से इस बात को मैंने कभी नहीं सुना। मैंने बच्चे को मिशन में भेज दिया, मदर की देखरेख में। बस हम लोग फिर मिस्टर लेनी और मिस शेरली बन गये..... वही पुराना कार्यक्रम फिर शुरू हुआ?

एक दिन की बैरिन शाम—

मैं शेरली को लेकर 'वालरूम' गया था। वहाँ अचानक मेरे बड़े पुराने और अजीब दोस्त कैप्टेन हेरी से मेरी मुलाकात हुई। मैंने शेरली से उनका परिचय टी टेबिल पर कराया, 'कैप्टेन, मीट भाई कजन शेरली हेरी.....कैप्टेन हेरी.....।' 'हाउ डू यू डू' कहकर अपने नाजूक हाथ को शेरली ने हेरी की ओर बढ़ाकर ज्योंही उसकी ओर देखा तो वह देखती ही रह गई। उम में वहीं छोड़ और डान्स के लिए उनकी अनुमति प्राप्त कर थोड़ी देर में आने को कह वहाँ से चला गया और जब आय वंटे में वापिस लौटा तो दुनियाँ ही बदल चुकी थी। मेरी लहलहाती हरी-भरी दुनियाँ में पाला पड़ गया था। शेरली ३० मिनट में ही कैप्टेन की हो चुकी थी। यह सब क्यों? बस और कुछ नहीं कैप्टेन के थी स्टार, कन्धे पर लटकती सोने की चेन, पी केप पर सुनहरा अशोक स्तंभ और मखमली डान्स ड्रेस वगैरह का कमाल ही था। फिर उस दिन कैप्टेन जरूरत से ज्यादा स्मार्ट दिख रहा था और इसलिये शेरली का आकर्षण स्वाभाविक था। आप सिगनल्स या अन्य लेन्ड फोर्सेज के अफसरों की ड्रेस पर मन जाइये। राज-पूताना इन्फेन्टरी की ड्रेस देखने योग्य ही रहती है और फिर डान्स में तो ये लोग निराले फार्म, में ही आते हैं, कि क्या कहना।

मैंने शेरली से घर चलने को कहा पर उसने बड़ी बेरुखी से 'तुम चलो मैं आती हूँ' कहकर छुट्टी पाई। मुझे गहरा धक्का लगा पर मैंने अपने आपको सँभाला और कैसे तो भी वापिस लौटा। सोचा—दुनिया वैसी नहीं है जैसी मैं सोचता था.....। ऐसी है—जैसी आज दिखी.....। इसमें शेरली का क्या दोष, क्या वह उससे अलग है? तब से शेरली ने मुझसे मिलना-जुलना बिल्कुल कम कर दिया।

एक महाने बाद, शेरली की साल गिरह पाटा में धड़कते दिल से मैंने उसकी माँ से कैप्टेन हेरी के साथ उसकी सगाई की खबर सुनी। कैंसा भयानक मजाक—एक वर्ष गाँठ के रोज हम दोनों एक दूसरे के हुए थे और आज उसी दिन मैं दिन-दहाड़े अपने ही दोस्त द्वारा लुट गया। मेरा कलेजा यह देख-सुनकर फटकर ज़ंम छार-छार हो गया। मानों मेरे दिल को गरम तवे पर डाल दिया गया हो..... ?

कैप्टेन मुझे हमेशा-हमेशा से बहुत चाहता था। अब भी चाहता है। तभी जब वह सदल सगाई के समारोह में आया तो मुझसे मिला और शाम को डान्स के लिए निमंत्रित कर गया। मुझमें इन्तकाम की आग भड़क रही थी। मुझे मौका मिला। सोचा—किससे बदला लूँ ? शेरली से—औरत से, जिसे मैंने प्राणों से ज्यादा चाहा और जिसने मेरा यह हाल किया, उससे ? लगता तो है कि मजा बना दूँ, पर क्या, मैं मर्दा हूँ और वह औरत। मैं, मैं ही हूँ और वह..... ? फिर मुझमें और उसमें अंतर ही क्या रह जावेगा ? यहाँ प्यार ने विजय पाई, मैं मामूली आदमियों के स्तर से ऊपर उठ गया पर दूसरी ओर मैं अपने को न सँभाल पाया और मैं बिल्कुल छोटा सा आदमी रह गया। मेरा बाँध टूट गया और मेरे मुँह से निकल पड़ा, मैं कैप्टेन से बदला लूँगा। उसने मेरे प्यार की दुनियाँ में डाका डाला है। बदमाश कहीं का, अब भी दोस्त होने का दम भरता है.....। नीच.....धोखेबाज.....डाकू।

मैं जानबूझ कर ही क्लब में बहुत ही बढ़िया ड्रेस पहिनकर जरा देरी से पहुँचा जिससे सबकी नजर मुझ पर ही पड़े। निशाना ठोक बैठा। डिनर के बाद डान्स में पहिला पार्टनर मैंने कैप्टेन की बहिन वीग को ही चुना। कैप्टेन को ३० मिनिट मुझे उजा-

ड़ने में लगे थे, मैंने १५ मिनट में ही सौदा कर लिया और रुप का बाजार बंद हुआ। मैं घर लौट आया।

केप्टेन को इसमें कोई एतराज नहीं है। बल्कि उसने यह कह कर कई बार प्रसन्नता ही जाहिर की है कि इस रिश्ते के बाद उनके सम्बन्ध और गाढ़े हो जावेंगे। शेरली और केप्टेन की शादी हो गई और केप्टेन की नियुक्ति अहमदाबाद में हो गई है। शेरली को उस दिन के बाद मैंने कभी नहीं देखा, देखने की कोशिश भी नहीं की, वैसे वह अक्सर भाँसी आती है पर मुझसे कभी नहीं मिलती।

मैंने वीरा से शादी करने का निश्चय कर लिया है। वीरा जोधपुर में अध्यापिका है। मेरा बच्चा उसी के पास में है। मैंने कभी नहीं बताया कि वह मेरा लड़का है। उसके कई बार पूछने पर मैंने उसे अपने मित्र की धरोहर कहकर भूल-भुलैया में डाल दिया है।

मुझसे इस घटना के बाद भाँसी में न रहा गया और मैं उस २५० रुपया की नौकरी पर लात मार कर सिगनल्स में ४० रुपया माहवार पर दिन गुजार रहा हूँ कि शायद इस घटना को भूल सकूँ— वहाँ के लोग मुझे भुला सकेँ...

अप्रैल में मेरी वीरा से शादी हो जावेगी शादी के पहिले वीरा साफ बात चाहती है कि बाबा की माँ कौन है ? कुछ ही रोज पहिले उसका पत्र आया है जिसमें उसने लिखा है कि दो महीने बाद तुम मेरे हो जाओगे और मैं... पर मैं तुम्हारे इतने भी विश्वास के योग्य न बन सकी कि तुम मुझे बाबा की माँ का नाम भी बता सको ? भगवान् जाने उसे मैं कब तक भूठ बोलकर भुलावे में डाले रहूँगा जबकि मेरा बच्चा अब काफी बड़ा हो गया है और उसका रुप रंग बिलकुल शेरली जैसा है। संभवतः इस लिए ही तो वीरा बार-बार मुझसे बड़े अटपटे सवाल पूछती है... ?

“हे प्रभु मुझे शक्ति दे कि मैं अपने को सम्हाल कर सही रास्ते पर चल सकने का निर्णय कर सकूँ ताकि मेरे द्वारा न तो किसी का दिल दुखे और न अन्याय ही हो ! शेरली फूले फले, उसकी नई दुनियाँ भी न बिगड़े, भले ही उसने मेरा यह हाल कर डाला है। और मेरी प्यार की जिन्दगी भी आबाद रह सके।”

इसके बाद और भी जाने क्या क्या लिखा था पर वह मुझसे न पढ़ा गया...और मैं सो गया।

दूसरे दिन मैंने लेनी को उसकी डायरी वापिस करते हुए कहा—‘वाकई दोस्त तुम बड़े दिलेर और बहादुर हो जो हँसते-हँसते इतना सब कुछ सह गये ! तुम्हारी जिन्दादिली काबिले तारीफ है ! मानों हर हालत में तुमने जिन्दा रहना और जिन्दा-दिल रहना सीख लिया है, दूसरों की हँसी बनकर दुनियाँ को हँसाने वाले पैगम्बर की तरह। तुम्हीं जैसे आदमी ही इस भयंकर दुनियाँ में जी सकते हैं। जियो जब तक जी चाहे, तुम जैसे इन्सानों की इस दुनियाँ को सीख देने के लिए सख्त जरूरत है ! तुम्हारे साथ मैं भी ईश्वर से प्रार्थना करूँगा कि वह तुम्हें सही निर्णय लेने की क्षमता दे और सुखी और आबाद रखे।

आज की कसौटी

जब से नौकरी मिली है तब से घर पर आने जाने वालों का तांता सा लगा रहता है। पढ़ लिख जाने से जो बहुत से नुकसान मुझे हुए हैं उनमें से एक यह भी है कि जान-पहचान वालों की संख्या बे-हिसाब हो गई है। दफ्तर से लौटने के बाद अभ्यागतों की एक लम्बी चौड़ी लिस्ट जब सामने आती है तो उसे देखकर दफ्तर की मुनीमी से पैदा हुए सिर-दर्द के साथ, बुखार भी आ जाता है। मैं किसी से कहता नहीं हूँ कि आप मेरे घर तशरीफ लाइये पर कोई आ जाता है तो फिर घर में छुपकर यह कैसे कहला दूँ कि जीजा जी कहते हैं कि जीजा जी घर पर नहीं हैं। कोई आता है और उससे चायपानी की न पूछू तो भी खैर नहीं, फिर व्हेरायटी और रेंसीडेंसी रोड पर मधुबाला और नर्गिस की तरह अपनी ही चर्चा होगी और यदि सबकी चाय-शाय की चिन्ता करूँ तो अपने खाने की चिन्ता दूसरों को करना पड़ेगी, जिसकी चिन्ता किसी को नहीं है। जमाने की खूबी कि जितना अधिक पढ़ो उतनी ही छोटी नौकरी मिलती है। पढ़ने लिखने से औसाब बढ़ जाते हैं, लोग, नाते-रिश्तेदार बड़ी-बड़ी उम्मीदें करते हैं और यदि उन्हें पूरी करने का हौसला रखूँ तो सिर में बाल न रहेंगे।

दफ्तर में छोटी सी नौकरी क्या करने लगा हूँ, लोगों को वहम हो गया है आफसरी का। आसपास के लोग बात करते हैं—“भैया बड़े ओहदे पर हैं और सरकारी मोटर पर चलते हैं” अब उनको कैसे समझाया जाय कि वह हाथी अपने स्वर्गीय पिता पं० गिरधारी लाल शुक्ल का नहीं, सरकार बहादुर का है। शासन मुद्रणालय जाते हुए किसी छुटभैया से देख लिया होगा, दस

धजी का सॉप बन गया। लोगों को भले ही गलतफहमी हो पर अपन तो अपनी औकात को जानते हैं। फिर भी गांव से पहचान वालों की चिट्ठियाँ आती हैं, सम्बन्धी संदेशों भिजवाते हैं कि फैला मिनिस्टर से लड़के को नौकरी दिलवा दो, अमुक का तबादला करवाना है और रमुआ को पुलिस ट्रेनिंग कालेज में भरती तो हो ही जाना चाहिये तो मैं अपने करम पर हाथ पटक कर रह जाता हूँ कि अगर इतनी ही पहुँच होती तो यह नौकरी करता ? सरासर सामने कैसा क्या होता चला जाता है, किस किस को क्या क्या मिलता जाता है, पर मैं तो चुप-चाप देखता रहता हूँ और घरवाली की कही हुई बात सोचकर संतोष कर लेता हूँ। कि अपना अपना भाग्य, जो जितना डिज़र्व करता है—उतना उसको मिलता है। बस यही काफी है इसी से संतोष होना चाहिए सोचता हूँ, जो कुछ लोगों ने कर दिया है वही क्या कम है वरना कौन किसको पूछता है आज की दुनियाँ में ? बावन गंडे फिरते हैं हम जैसे। लोगों को कौन समझाये कि ६०) तो मकान का किराया ही देना पड़ता है और तुम्हें चायपानी पिलाऊँ तो मैं क्या जहर पीलूँ ? फिर भी लोग टी. टी. आई की तरह आ धमकते हैं।

बूढ़े काका ने सोचा 'गाँव में क्या रखा है, बीबी-बच्चे हैं नहीं भतीजा सरकारी नौकरी में है उसी के पास आखरी समय आराम से गुजरेंगा तभी एक रोज गाड़ी में बैठकर वे यहाँ आ गये प्रसन्नता बहुत हुई हमको और उनको भी पर दूसरे ही क्षण दिल की धड़कनों की संख्या बढ़ गई। अब इनकी आवभगत, रोग बीमारी में इलाज कैसा क्या होगा ? फिर सोचा दम तो लो, अब क्या फायदा है अफसोस करने से ? चिन्ता करने से काका जी वापिस तो चले नहीं जावेंगे कुछ ?

धीरे-धीरे दिन गुजरने लगे और गृहस्थी की गाड़ी आगे बढ़ने लगी। काका जी एक रोज अचानक बीमार हो गये डाक्टर को या दवा लाने को तो पैसे कहाँ थे, माताराम का वही कुछ काढ़ा-वाढ़ा

चलने लगा पर बीमारी थमने के कुछ लक्षण ही न दिखते थे। बड़ी चिन्ता में रहता था। अब बेचारी एक अकेली गरीब चिन्ता ही तो है जो साथ नहीं छोड़ती, और कौन साथ देता है आज की इस दुनियाँ में जिसकी नजरों में इन्सानियत और योग्यता का मापदंड सिर्फ पैसा है ? दोपहरी में होटल में चाय पी रहा था कि अचानक एक डाक्टर मित्र ने कंधे पर हाथ रख कर कहा : “कहो प्यारे, बड़े गमगीन हो, दिल-विल तो है कि.....अरे हाँ दिल यहाँ कहाँ ? कहीं दिल की बीमारी तो नहीं हो गई ? पर गम नहीं, अपने राम तो दिल का इलाज भी करते हैं। अरे जालिम, पास ही तो दवाखाना है, कभी आ जाया करो, बस खूब घुटेगी.....अच्छा खुदा हाफिज चलता हूँ।”

जाते हुये डाक्टर का हाथ पकड़ कर चुप्पी को तोड़ते हुये मैंने कहा—“अच्छी याद दिलाई, हां मेरे काका बीमार हैं, उनको...”
“... ..उनको देखना है, आज ही सही-अभी, चलें.....”

“तुम नहीं, रिक्शे से मैं ही ले आऊँगा उन्हें कोई खास बीमारी थोड़े ही है।”

“अच्छा तो आज पाँच बजे ले आओ, हाज़िर रहूँगा. कुछ तो खिदमत करने का मौका मिले मुझे.....”

घर आया, सामने बड़ी गंभीर समस्या खड़ी हो गई—रिक्शे को पैसे कहाँ से आवें ? यहाँ कुआँ वहाँ खाई, डाक्टर को बलाता तो फीस के पैसों का सवाल था और अब है रिक्शे के पैसों की समस्या !

ठंड काफी थी फिर भी समझा-बुझाकर काका को साइकिल के ‘केरियर’ पर लेकर डाक्टर के पास पहुँचा। डाक्टर ने हालत देखकर ‘टाइफाइड’ की शिकायत बताई और सलाह दी कि इन्हें पूरा आराम मिलना चाहिये, परहेज खूब रहे और खाने को डबलरोटी और दूध के अलावा कुछ न दिया जाय इस तरह कगीब आधे दर्जन दवा और टानिक की चिटें जेब में रखकर घर लौटा आठ

को धोखा देता रहा कि दवाइयाँ जारी हैं, मरीज को पूरा आराम मिलता है। इस तरह दिन पर दिन उनकी हालत बिगड़ती गई।

एक दिन शामको कुछ रिमक्ति हो जाने से ठंड बहुत हो गई थी। बीमारी बढ़ जाने के कारण काका जी को बोलने-चालने की ताकत और हिम्मत न रही थी पर अस्पताल तो ले ही जाना था। मैंने उनकी इच्छा न होते हुये भी रजाई में लपेट कर उन्हें साइकिल पर बिठाला और दुनियाँ की नजर बचाकर तेजी से एक सुनसान रास्ते पर साइकिल को बढ़ाया। उतार में काका जी अपने को न संभाल सकने के कारण साइकिल पर से लुढ़क गये और जब तक मेरी गाड़ी थमी तब तक उनकी जिन्दगी की गाड़ी भी रुक चुकी थी।

बड़ी मुश्किल से वहाँ एक रिक्शा मिला। मैं अपने मृत काका को लेकर घर लौटा। तुरंत मुहल्ले भर में खबर हो गई कि मेरेकाका जी चल बसे हैं। सैकड़ों की तादाद में लोग उनकी अंतिम क्रिया में शामिल हुये दो तीन रोज तक सहानुभूति दिखाने वालों का ताँता लगा रहा और अब तो कुछ खास आदमियों ने सलाह मशविरा देना शुरू कर दिया कि खारी का समय करीब आ गया है मुझे प्रयाग जाने की तैयारी करनी चाहिये। फिर अपनी मान प्रतिष्ठा के अनुसार तेरहवीं भी तो.....।

खून के घूट पीकर चुपचाप मैं लोगों की बातें सुनता रहता और किसी से कुछ न कहता। मुझे कहने वालों की वृद्धि पर तरस आता और दया भी, कि भले आदमी यह नहीं सोचते कि तेरहवीं को कहाँ से रुपये आवें? मेरे पास रुपये-पैसे होते तो तेरहवीं की नौबत ही क्यों आती?

दसवें रोज मैं तड़के उठा और श्मशान से चुपचाप अवशेष बटोर लाया तथा घर के पिछले बरामदे में उनकी पोटली टाँग दी।

मित्र लोग पधारे और खारी उठाने चलने का आग्रह किया। मैंने संजीदगी के साथ कहा—मैं उठा लाया हूँ और अब इन बातों का क्या मतलब ? जिन्दा रहते उन्हें ठीक से खाना तो दे न सका, दवादारू हो न सकी। अब अस्थियों का क्या ?

“अरे बाह, क्या बात करते हैं आप, भगवान का दिया सब कुछ है, क्रिया काँड तो करना ही है। आज नाई-धोबी आदि को खिलाना है, यह तो दुनियाँ की रीति है, इस तो.....।”

“दुनिया की रीति हो, भले ही अपने यहाँ कुछ रीति नहीं। मेरे पास न तो नाई—धोबी को खिलाने को है और न भले आदमियों को ही।”

“क्या कह रहे हैं आप ?”

“हाँ भाई ठीक कह रहा हूँ, आप मेरी मजबूरियों को क्या जानें ?”

“ठीक है, जो जी में आवे करिये पर जब दिन-तेरहवीं न होगी तो आपके यहाँ पानी कौन पियेगा। आखिर शुद्ध ताई तो करना ही पड़ेगी न ?”

“मेरे भाई, यदि दिन-तेरहवीं से शुद्ध ताई होती है तो मुझे अशुद्ध ही बना रहने दीजिये। आप लोग मत आइये मेरे यहाँ। मैं कोशिश करूँगा कि आप लोगों के बिना भी जिन्दा रह सकूँ।

मित्रमंडली छूमंतर हुई। सोचा—अब तो मुक्ति मिलेगी। काका जी मर गये पर इन लोगों से तो.....।

थोड़ा अंतरा होने पर मैंने अवशेषों की पोटली उठाई और पास के नाले में उन्हें फेंकते समय बरबस मेरे मुँह से निकल पड़ा जा अभाग तेरे लिये यही बहुत था, जिसे जीते जी ठीक से भोजन न मिला और न दवा-दारू ही मुयस्सर हुई, उसे इतसे अधिक और क्या मिलता ? गंगा मैया में इन्हे फेंककर मैं क्या उनको कलंकित

करता ? अब जाकर पूछना अपने राम से, जिनका जाप सुबह-शाम करते थे, कि तुमने कौन सा पाप किया था जिससे तुम्हें ईमानदार और शरीफ बनाया गया, भलमनसाहत बक्शी गई कि कभी ठीक से खाना भी न मिला । और जब तुम्हें रोटी हासिल न हो सकी तो गंगा जी कैसे नसीब होतीं ?

और दूसरे दिन से लोगों ने मेरे घर की ओर देखना भी बन्द कर दिया ।

— — —

कागज की नाव

लाज मेरी,

आज दफ़्तर की मेरी नौकरी छूट गई है। मैं बेकार हूँ। वैसे तुम कहोगी—कि मैं बेकार कैसे, कारवाला तो हूँ। पर यह बात भी गलत होगी। अब कार-वार मेरे पास कुछ नहीं है। मैं पहिले ही अर्ज कर चुका हूँ कि दफ़्तर की मेरी नौकरी छूट गई है। मैं एक दफ़्तर का बाबू था। और आज बेकार हूँ। परेल की, गंदी छोटी-सी एक बस्ती का मेरा इकलौता सजा हुआ कमरा लोग-बागों के द्वारा धर्म-शाला कहा जाता है। यह ठीक वैसा ही कलेराडरों और तस्वीरों से सजा हुआ है जैसा मेरा वहाँ का कमरा था जिसे तुमने कभी 'पान की दूकान' कहा था जो जिस वक्त चाहा आ धमका। हर दरवाजा, हर खिड़की, इसकी खुली रहती है— हर आदमी के लिये। उसमें एक टीन का काला ट्रंक रखा रहता है जिसके बारे में लोगों ने जाने क्या-क्या रायें बना कर रखी हैं। और उसमें मेरी जिन्दगी बन्द है। अपनी हमेशा की आदत की तरह डायरी लिखकर मैं अपने दोस्तों द्वारा अजायबघर और जादू की पिटारी कहे जाने वाले इस आधे पालिश किए और आधे बिना पालिश किए हुए ट्रंक में डायरी रख दिया करता हूँ कि कहीं कुछ राज न खुल जावे। वैसे राज राई भर भी नहीं है उसमें। ताला खोल मैंने अजीब-सी एक सॉम लेकर डायरी को बन्द किया और उसको उसकी अपनी जगह रखा तो ऊपर से—मेरा मतलब था दराज के ऊपर के तल्ले से, नाव गिर पड़ी। यह एक अजीब बात है। आप लोग कहेंगे—न यहाँ सागर है, न समुन्दर, फिर यह नाव कहाँ से उपजी? कौन है

इसका मल्लाह ? देखिये, तभी तो मैं कह रहा था मेरी पेट्टी एक अजायबघर है—जादू का पिटारा, जिसके विषय में जानकारी की तमन्ना लोगों को बनी रहती है। तुम्हें याद होगा—तुम्हें भी थी। पर हाँ, यह वह केवट की नाव न थी जिसमें बैठकर रामचन्द्र गंगा पार उतरे थे। यह नाव थी, कागज की। हाँ, हाँ, कागज की नाव, जो तुमने मुझे पार करने को नहीं डुबो देने के लिये बनाई थी। और मैं डूब ही तो गया, बिलकुल खत्म हो गया—मिट गया। क्यों कि भला कागज की नाव से भी कोई वेटिकिट कहीं जा आ सकता है वैसे कहा तुमने यही था कि लो, यह नाव बन गई; बस किनारे २ खेने हुए चले जावेंगे और तब पार लग ही जावेंगे। मुझे भी कुछ ऐसा ही लगता था उन दिनों तुम्हारे साथ ! पर क्या कागज की नाव से भी कोई पार हो सकता है ? हाँ, ता मेरी जिन्दगी से बड़ा ताल्लुक रखती है यह कागज की नाव। बात है, १९५२ के नवम्बर या दिसम्बर की—जब हम दोपहरी के बाद चाय की चुस्कियों के साथ ‘रूबी होटल’ में बैठे बातचीत कर रहे थे ! बदमाश महेश कह रहा था, “लाज देवी, यह लिबास आपको बड़ा जेब देता है। यह फर का हरा पुलोव्हर, ये आसमानी...” तभी बीच में ही तुम बोल उठी थीं कि आमलेट खाना है या उबाले हुए अंडे, वैसा साफ कह दीजिये इंजीनियर साहिब, आप तो तारीफ के पुल बांधे जा रहे हैं।

और तभी तुमने मेरी नई कहाना ‘हिंडोले के आठ चक्कर’ के पहिले पन्ने को फाड़कर उसकी नाव बना दी थी और कहा था,—“लोजिये पंडित जी, यह नाव पार उतरने को.....।”

आज ज्योंही यह नाव सामने आई है, तुम्हारी तस्वीर को—क्योंकि तुम पास में नहीं हो, इससे तुम्हारी गैरहाजिरी में, बार-बार देखने को जी चाहता है। लगता है, उसे कलेजे से लगा लूँ।

याद है कालेज के उन दिनों की जब मेरे माँगने पर भी तुमने अपनी तस्वीर नहीं दी थी। पर मैं कहीं से पा गया था एक तस्वीर। और बस मेरा काम बन गया। यार को तो यारी से मतलब। सोचता था कि जब तुम मेरे पास नहीं होओगी और मैं तुम्हें नहीं पा सकूँगा, इसका तो करीब-करीब निश्चय ही था, तब इस तस्वीर से ही दिल बहला लिया करूँगा। वैसे खून और मांस की चीजें मेरा दिल नहीं बहला सकीं हैं तो तस्वीर क्या खाक कुछ करेगी ?

और तभी इस नाव—तुम्हारी तस्वीर के साथ तुम्हारी याद-दाश्त, तुम्हें लिखे हुये ये तीन-चार खत, जो मैंने अपनी लापरवाही और आवागारागर्दी की जिन्दगी में, यहाँ-वहाँ अपने उबले हुए खून से रचकर और संजोकर रखे थे। इन्हें “पोस्ट” नहीं किया था। इसलिये नहीं कि मैं डरता था, डरपोक था। डरा तो मैं कभी उस भगवान से भी नहीं जिसने लोगों के मतानुसार मुझे पैदा किया है। तभी जो जी में आया किया। डरती तो थीं तुम और तभी जाने क्या-क्या चाहते हुए भी कुछ कह नहीं सकती थीं। ठीक भी है, प्यार करने के लिये बड़े साहस, हिम्मत और बड़े मजबूत दिल की आवश्यकता पड़ती है, और तुम्हारे पास मजबूत दिल क्या दिल भी था, यह भी मैं ठीक से नहीं कह सकता। मैं तो तुम्हें यह खत भेज सकता था, पर तुम्हारी स्थिति का खयाल करके ही मैंने ऐसा नहीं किया कि किसी दिन मैया जी जान गये तो मेरा क्या, तुम्हारा जाने क्या हाल होगा ? कब तक “उमा” लिखकर धोखा दिया जा सकता था। किसी दिन तो पता पड़ ही जाता कि पत्र लिखने वाली “उमा” नहीं बल्कि कोई “शंकर” है। फिर.....फिर क्या होता ?

इस पर जब मैं सोचता हूँ तो इसके लिये मैं तुम्हें भी दोष नहीं देता। सोचता हूँ कि तुम भी क्या करो। यह सब तो तुम्हें अपने

आसपास वालों के डर से ऐसा करना पड़ता है। इसके लिये तुम नहीं, तुम्हारा समाज दोषी है। परिस्थितियाँ अपराधी हैं। इंसान परिस्थितियों का गुलाम है। इसके बाहर तुम, तुम क्या कोई भी कैसे रह सकता है? फिर लगता है—यह कुछ नहीं, दिल को समझाने का साधन भर है।

आज इन खतों को फिर पढ़ लेने का लोभ मैं नहीं टाल सक रहा हूँ।

तो, तुमसे और तुम्हारी दुनिया से परेशान होकर—हारकर जब मैं उस दिन भाग निकला था, शान्ति और सकून की खोज में। पर क्या वह मिली मुझे? बिल्कुल नहीं, कहीं-नहीं। वही विषमता, रोटो-रोजी का सवाल, गरीबी-अमीरी, नौकर-अफसर का मसला और भगड़े-फिसाद। लाज, मुझे इस दुनिया में कहीं शान्ति नहीं मिल सकी। इस विषमता और गड़बड़ी से लोग कोशिश करके भी मुक्ति नहीं पा सकते। बस, कुछ उन्नीस-बीस का अन्तर है, और इस सब में अपने-अपने देश की परिस्थितियाँ, रीति-रिवाज वगैरह भी शामिल हैं। उसी के कारण यह थोड़ा अन्तर कहीं-कहीं मिल जाता है। मुझे पता लगा था कि मेरे घर के लोगो' ने मेरा पता लगाने को पूरी-पूरी कोशिश की थी जो कि स्वाभाविक था। वे मेरे घर के लोग थे और फिर मैं बैंक से हजारों रुपया लेकर निकला था। पर वे असफल रहे थे। मुझे यह भी पता लगा था कि दुनियावालों ने भी बड़ी दिलचस्पी ली थी, यद्यपि उन्हें ऐसा बिल्कुल नहीं करना चाहिये था। करना तो जाने उनको क्या-क्या नहीं चाहिये, पर करते हैं वे लोग। अब कर लीजिये आप क्या कर सकते हैं उनका?

अब तो लगता है—तुम और तुम्हारी दुनिया वाले इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके होंगे कि या तो मैं मर गया—स्वाभाविक

मौत या फिर मैंने दुनिया से ऊबकर खुदकुशी कर ली। तभी आज तुम्हें इन खतों को पढ़ने में मजा आयेगा।

मुझे लगता है—तुम्हारी शादी भी हो गई होगी अब तक और शायद दो-चार बच्चे भी हो गए होंगे। मेरे इन खतों को कहीं तुम्हारे पति महोदय देखकर, तुम्हारे घर के लोगों की तरह, तुमसे कुछ अनाप-शनाप न बकने लगे और शक कर बैठें—इसकी मुझे बड़ी चिन्ता है। पर यदि ऐसा कुछ हो जाये तो मेरी तरफ से कह लेना कि कोई बात नहीं है। और अपनी तरफ से कहना कि यह तो मूर्ख था, मताया हुआ एक बुद्ध। तभी मुझे इस पर दया आती थी, खूब सी। प्रेम-व्रेम मैं नहीं करती थी। कैसे कर सकती थी यह गलती। कह देना भगवान के लिये ऐसा.....। कहो, कह सकोगी ऐसा...?

×

+

×

मेरे लाड़ की लाज,

और मैं काश्मीर में हूँ। यहाँ बर्फ से लदे ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं और जहाँ हैं खूबसूरत पहाड़ी लड़कियाँ। मुझे लगता है—ये पहाड़ों की आत्माएं हैं। कितनी शराफत, कितनी सादगी कि कहा नहीं जा सकता, क्या क्या है वहाँ उनमें। आज मैं श्रीनगर से करीब ४५ मील दूर बनहाल के दामन में बेरीनाग चश्मे के आसपास भटक रहा हूँ। बेरीनाग चश्मा जहाँ से भेलम ने रौनक और जिन्दगी पाई है और तब इस पर नाज करती, इठलाती बल खाती, भेलम आगे चलकर सैकड़ों हजारों इंसानों की जिन्दगी बनी है। एक पहाड़ी लड़की भेड़ों को लिए चली जा रही थी। मैं ओव्हरकोट में हाथ ढाले पहाड़ी ढाल पर चला जा रहा था, खोया-खोया सा। उस लड़की ने बताया, वह रास्ता गलत और खतरनाक था जिस पर

में जा रहा था। तो उस पहाड़ी और जंगली कही जानेवाली मानवी ने मेरी मदद की, मुझे सही रास्ते पर पहुँचाया।

“बाबू जी, इस रास्ते पर खतरा है, यहाँ से जाइये...”

“ऐ...जी...?” मैंने मानो सोते से जागकर कहा।

“इस रास्ते से जाइये, क्या काश्मीर पहिली-पहिली बार आये हैं?”

“मैं...हाँ, हाँ...काश्मीर तो पहिली ही बार आया हूँ, तुम्हारा नाम क्या है?”

“जरीना...”

तो जरीना ने मेरी मदद की। मुझे ख्याल हो आया आजकल की लड़कियों का, तुम्हारा...। ज़िम्मे मैंने यह नतीजा निकाला है कि इंसानियत, शराफत इन पहाड़ों में बसती है,—उन पहाड़ी लड़कियों की आंखों में। शहरों में नहीं, शहर की पढ़ी-लिखी लड़कियों की नज़रों में नहीं। जो न किसी पर विश्वास करती हैं और जो न किसी का विश्वास बनती हैं।

और इस तरह काश्मीर की इस खुशनुमा, भोली-भाली और सीधी-साधी तथा ईमानदार दुनियाँ में मैं रम गया, कह लीजिए खो गया। रोज़ जब मैं बेरीनाग के रेस्टहाउस से निकलता तो कई “जरीना” और “बानू” बातें करतीं, स्नेह नूतनी-चुटातीं मिलती थीं और दिखती थीं।

एक दिन की बड़ी खूबमूरत रात थी। ऐसी रात जब बर्फ की उस पवित्र, साफ़ स्वच्छ दुनियाँ में चाँद मदहोशी घोल रहा था, तब जाने क्यों मैं रात में भी बाहर निकलने के लोभ को न रोक सका। तभी देखा, जरीना जाने कहाँ खोई-खोई सी भागी जा रही थी।

“अरे, तुम इतनी रात इस रास्ते से कहाँ भागी जा रही हो ?

यह रास्ता गलत है, इस रास्ते से जाने में खतरा है, यहाँ से जाइये न ? क्या काश्मीर पहिली-पहिली बार आई हैं ?”

और तब पलट कर उसने मेरी ओर एक बार देखा, कुछ मुस्काई सी और जोर से भागकर बर्फ में समा गई ।

एक दिन मैंने जरीना के हाथ को पकड़ कर जब उसे समेट लेने की कोशिश की तो जानती हो उसने क्या कहा था ?

उसने कहा था—“यह क्या ?”

“यही तो सब कुछ है, इसे ही तो जिन्दगी कहते हैं....।” मैंने कहा ।

“और कोई देख लेगा तो.....?”

“मैं यही तो चाहता हूँ कि कोई देख ले । कोई क्या, सब देख लें कि यही दुनिया है, यही जिन्दगी.....।”

“बाबू जी, हाथ पकड़ा है तो कभी छोड़िये मत । तब तो बात है, वरना...। वरना यहाँ इस तरह के बहुत से बाबू लोग आते हैं और दो-दस रोज हम लोगों की जिन्दगी को मुसाफिरखाना मान, रहकर और मजे लूटकर अपना दर्द और बेचैनी कम कर तथा हम लोगों के दर्द को बढ़ाकर चले जाते हैं, हमें रोता-बिलखता छोड़कर और फिर कभी नहीं आते । उनको इन निकलते हुए आँसुओं पर भी दया नहीं आती.....।”

और मैंने देखा तब तक जरीना की पागल कर देने वाली बड़ी-बड़ी आँखें डबडबा आई थीं । मैंने उसे अपने आगोश में लेकर उसके गर्म-गर्म नमकीन आँसुओं को चूम लिया और वह जोर से हंस पड़ी तथा मेरे हाथों को अलग कर भाग गई । याद है तुम्हें, उस दिन जब मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ा था तो तुमने क्या कहा था...? बस, अब मैं कुछ नहीं कहता । तुम्हीं याद कर लो । मुझे

दुख होगा और लोग सुनकर तुम्हारी मजाक उड़ावेंगे। मैं अपने दोस्तों के लिये बड़ा ईमानदार हूँ, तुम यह जानती हो। तभी नहीं चाहता कोई तुम्हारी इन छोटी-छोटी बातों पर ही मखौल करे।

और जब मैं वहाँ से विदा हुआ था तो जर्गे-जर्गे मैं जरीना को प्यार में कह लिया करता था—खूब रोई थी। मेरे सीने पर सिर रखकर कि मेरा पत्थर जैसा कलेजा भी भर आया था और मैंने अपने आप को बिल्कुल संभाल न सका था। सच लाज, मैंने प्यार किया है और आप लोग कहती हैं कि आप लोगों ने भी मुझको प्यार किया है, पर मुझे आज तक ऐसी दरियादिली कहीं देखने को नहीं मिली कि जिनके सीने पर सिर रखकर कभी मैं अपने जी को हलका करने का मौका पा सका होऊँ और जिन्होंने मेरे सिर को सहलाकर मुहब्बत की दो बातें भूल या धोखे से भी कह ली हों...? मैं इस बीच इस निष्कर्ष पर जरूर पहुँचा हूँ, चाहे गलत हो या सही, कि औरत पुरुष की कुदरती भूख की रोटी है जिसे आदमी खा सकता है, प्यार नहीं कर सकता। ठीक भी है, यदि घोड़ा घास को प्यार करने लगे तो बस हो गया काम.....?

उम्मीद है तुम मेरी बातों का बुरा न मानोगी और ऐसा ही इन बातों को लोगी जैसा मैंने कहना चाहा है और जो इनका मतलब है। ऐसा कुछ मुझे यहाँ रहकर महसूस हुआ तभी लिख डाला। चाहो तो इस स्पष्टवादिता के लिये, जो कि भयंकर सत्य है, माफ कर देना। पत्र लम्बा हो गया। लम्बा पत्र लिखना अच्छी बात नहीं है और वह भी औरतों को, जिन्हें पत्र लिखना भी मेरे उमूलों के खिलाफ है। पर क्या किया जावे। जाने कौन सी चीज थी जिसने मुझे इन सब बातों के लिये मजबूर

किया कि मैंने तुम्हें पत्र लिखा और वह भी काफी लम्बा। मुझे विश्वास है हमेशा की तरह इसे भी माफ कर दोगी।

आशा है, सानन्द हो । तुम्हारा ही,
बेरीनाग रेस्ट हाउस, श्रीनगर ।
+ + +

मेरी अच्छी लाज,

आज मैं अमेरिका में हूँ। उस अमेरिका में जहाँ के पूँजीवाद की चर्चा हमने लोगों के मंह से सुनी थी और जहाँ के ऊँचे-ऊँचे मकानों की बातें हम लोगों ने भूगोल में पढ़ी थीं। इन दिनों मैं रोमा देवी के साथ खेत-खलिहानों में घूमा करता हूँ। आज जब एक लड़के ने मुझे इस जगह एक प्याला चाय दी तब मुझे ध्यान आया साथी जयप्रकाशनारायण जी का, जो यहीं-कहीं इसी भूमि पर, किसी होटल में पढ़ाई के समय के पहिले और बाद में चाय के कप-प्लेटों को साफ किया करते थे। उन्हीं खेत-खलिहानों में मुसीबतें भेलकर अपने खून को पसीना बनाकर मजदूरी करके आज वे हमारे रहनुमा बने। रहनुमाई कोई सूट-पतलून पहिनकर होटलों और रेस्ट्रॉ में चाय के प्यालों की खनक और सिगरेट के गुब्बारों में नहीं पा सकता, जैसा कि आजकल के विद्यार्थी करते हैं। रहनुमाई मिलती है सेवा में, मजदूरी में, मजदूरी को रौनक बक्शने में-वैसी ही जैसी जयप्रकाश जी ने बक्शी थी। तभी मैंने वहाँ की मिट्टी को अपने मस्तक पर लगाया और अतीत की स्मृतियों के उस केन्द्र को प्रणाम किया। आज जब मैं जयप्रकाश जी के विद्यार्थी-जीवन और आज के लोगों के विद्यार्थी-जीवन पर सोचता हूँ तो इतना अन्तर पाता हूँ जो कभी पूरा न हो सकेगा। सच लाजो, यहाँ के आदमी बड़े जीवट के हैं। अपने यहाँ जैसे नहीं कि.....। खैर, छोड़ो भी।

आजकल हम लोग एक बस्ती में रहते हैं जहाँ हमने “नाइट-स्कूल” खोली है। यहाँ की स्थानीय भाषा रोमा पढ़ाती है, और मैं पढ़ाता हूँ हिन्दी। हाँ, ये रोमादेवी मेरी एक मित्र हैं, न्यूयार्क की। मैं इन्हीं के घर में रहता हूँ और खाता-पीता हूँ। ये मिची-गन यूनीवर्सिटी में पढ़ती हैं और आजकल छुट्टियों में आई हैं। तभी हम लोग इस तरफ इन्हीं के “कन्ट्री-हाउस” वाले गाँव में चले आये हैं। बस, हम लोग किसानों और मजदूरों की इस बेहतरीन दुनियाँ में रहते हैं, साथ में काम करते हैं और रात को नाइट-स्कूल चलाते हैं। कितना मज़ा है इस जिन्दगी में। इन अपने ग्रामीण भाई-बहिनों के साथ उठना-बैठना, खाना-पीना भी क्या खुशनसीबी की बात है।

तुम्हें याद होगा जब मैंने वहाँ “नाइट-स्कूल” खोला था और तुमसे सहयोग का माँग की थी तो तुमने कितनी तर्कहीन और बेकार की बातें कह कर उसे टाल दिया था। खैर, गिला तो तब हो जब किसी से भी निवाही हो। मैं आजकल इनके साथ कार में घूमने भी निकलता हूँ। तुम्हें शायद इस पर कुछ बुरा लगेगा क्योंकि शायद तुम्हारे विचार में—यह अधिकार तुम्हें ही था। पर तुम तो हमारे साथ चलने-फिरने, मिलने-जुलने, काम करने में जमाने भर के बहाने कसती थीं और उस दिन जब... के साथ कार में बैठ कर जा रही थीं तब जानती हो मुझे कैसा लगा था ? कि वह कार जवाहरलाल नेहरू मार्ग पर नहीं, मेरे सीने पर चल रही है। खैर, छोड़ो भी अब ये बातें। तुम फिर नाराज हो जाओगी। कहाँ की बेकार की बातें निकल पड़ीं। चाहो तो इस बार भी माफ़ कर देना।

शादी कब और किससे कर रही हो ? बुलाओगी मुझे अपनी शादी में कि नहीं ? अपनी स्नेहमयी माता जी को मेरी याद दिलाना। शेष फिर।

तुम्हारा ही,

+ + +

— — —

प्रियवर लाजवन्ती,

भिन्न-भिन्न देशों को देख-सुन कर आज मैं अपने मुल्क में आ गया हूँ। बम्बई में परेल की एक गन्दी सी बस्ती में रहता हूँ। मेरे सब पैसे खर्च हो गये हैं। आज मैं कार पर नहीं चढ़ सकता, सिर्फ आस-पास से निकलने वाली कारों की धूल ही मुझ पर चढ़ रही है। सोचता हूँ, यह सब है क्या ? एक आदमी कार पर बैठ कर निकलता है हवा खाने को, दूसरे कई हजारों-लाखों कार की धूल खाने निकलते हैं, उसी समय, और कई निकलते हैं मरने-कुचलने को उन्हीं कारों से।

मैं मजदूरों की बस्ती में रहता हूँ। मेरे पड़ोस में कामरेड लाजरस रहते हैं। उनके घर में उनको मिलाकर कुल तीन आदमी हैं। वे, उनकी बूढ़ी माँ और एक जवान क्वॉरी बहिन। ये लोग मुझे बहुत चाहते हैं। यूँ कह लीजिये कि मैं उनके कुटुम्ब का ही एक हिस्सा हूँ जो दूसरे मकान भर में रहता हूँ, अन्य कोई बात नहीं है। एक दिन जब मैं बीमार हो गया था तो जानती हो कामरेड लाजरस की जवान बहिन पूरी रात अकेली मेरे कमरे में रही, रात भर सोई नहीं और मेरी सेवा करती रही, यहाँ तक कि सुबह मेरा कराहना सुन कर उसने कई बार रोकने पर भी मेरे हाथ-पैर दबा दिये थे। यह क्यों ? हम लोगों के बीच तो कोई ऐसा रिश्ता-नाता न था, पर फिर भी यह सब क्यों ? मैं और सब तो कुछ नहीं जानता हूँ, बस जानता हूँ कि वहाँ कोई रिश्ता न होकर भी एक रिश्ता था, वह था इन्सानियत का। हम दोनों के बीच शराफत और इन्सानियत के ही दो धागे थे जिससे दोनों बँधे थे और उसी के कारण वह यह सब कर रही थी।

एक बार जब मैं वहाँ तुम लोगों के बीच काफी जोरों से बीमार हो गया था और तुम एक बहुत करीब के गाँव में होकर मेरे

लिखने पर भी कि तुम यदि मुझे देखने आओगी तो कुछ राहत शायद मिल सके: वैसे चैन नहीं ही मिलने वाली थी, नहीं आई थीं। यहाँ तक कि एक तीन पैसे का कार्ड डाल देने की अकल या इन्सानियत भी तुममें नहीं थी। मिस लाजरस की इन्सानियत और शराफत देखो, जहाँ कोई चीज हम लोगों के बीच में न थी और तुम्हारा अमानुषिक व्यवहार देखो जहाँ हम लोगों के बीच जाने क्या-क्या भावना काम करती थी। खैर, यह तो अपनी—अपनी तकदीर है। जो घास बोके चला है वह गोहूँ कहाँ से, कैसे और क्यों कर काटे ?

हाँ, आजकल जानती हो मैं सिगरेट पीने लगा हूँ, क्योंकि सिगरेट गम को गलत करने और दिल को बहलाने का एक साधन है, वह भी आखिरी। जब आदमी के पास कोई चीज तबियत बहलाने को नहीं रहती तो वह इसका प्रयोग करता है। मेरे पास भी आजकल कोई चीज नहीं बची, तुम भी नहीं रहीं शेष—तभी इसका शुरुआत हो गया है। दुनिया भर में धूम-फिर आया हूँ। कहीं शान्ति-सुख नहीं मिला। शान्ति कुछ-कुछ मिल रही है इस दुनिया में-किसानों की और मजदूरों की इस खुशनुमा बस्ती में।

आजकल कभी-कभी मेरे पास खाने को भी पैसे नहीं रहते हैं। तब कामरेड लाजरस का सहारा लेना पड़ता है। मैं यदि न भी कहूँ तो भी क्या, वे जब मानें तब न ? कामरेड लाजरस तपेदिक के मरीज हैं। उनके पास अपना इलाज कराने को पैसा नहीं पूरता, पर बहिन और माँ का पोषण तो करना ही है। जूम रहा है बेचारा बहादुर जिन्दगी से, फिर भी.....।

तभी मैंने एक मिल में नौकरी कर ली है। अब कुछ सन्तोष मा होना लगा है। कुछ लाजरस लोगों को भी कर लेता हूँ इसमें से। तभी मैंने अपने सम्बन्ध में जो धारणा बना ली थी

कि मैं बिल्कुल निकम्मा हूँ, मुझसे कुछ नहीं होने-जाने वा है, अपने लिये और इस दीन-दुनिया के लिये बिल्कुल बे हूँ—वह भी कुछ बदलती सी नजर आ रही है। बस दिन दपतर में काम करना, शाम-सुबह मिल के मजदूरों में उठना-बैठ उन्हीं के दुख-दर्द को सोचना-समझना ही मेरा धंधा हो गया। इसमें बड़ी राहत मिलती है मुझे, और भूलता जा रहा हूँ कुछ उन सदमों को जो तुम्हारी दुनिया में रह कर उठाये मैंने। पर क्या, इसी बीच यह हो गया और मैं नौकरी से अत कर दिया गया हूँ।

+

+

+

और आज मैं फिर से डायरी लिखने बैठा हूँ। क्योंकि अकसर थका और बेचैन होता हूँ, तब यही एक काम तो है मन को थोड़ा हलका सा कर देता है, मेरे गम को भुला देता है मैंने लिखा, कि केवल मैंने यही तो कहा था कि रामू, मि० बजा कामरेड मनोहर और प्रभात बाबू तुम हमेशा-हमेशा क्लक के मजदूर रहोगे और बड़ा अफसर हमेशा बड़ा आदमी और ब अफसर रहेगा। यह खाई तब तक रहेगी जब तक मेरे भाई दुनिया को न बदल दें। और दोस्त, दुनियाँ एक दिन में न बदली जा सकती, पूरी एक पीढ़ी मर खप जावेगी। बस य नपे-तुले शब्द जिसमें कुछ नहीं होकर भी सब कुछ था—एक यु की सिसकती हुई आत्मा—इन्सानियत की चीख और घुटे ह प्यार-मुहब्बत की सर्द आहें। इन्हीं थोड़े से अलफाजों ने मु मेरी अपनी नौकरी से मरहूम कर दिया। जानती हो क्यों बड़े अफसर ऐसी बातें सुनने के आदी नहीं होते। यदि ऐस करने लगे तो अफसर ही कैसे रह जाएँ वे ? ठीक है भाई, ऐस बातें करने और सुनने से दफतर का डिसिप्लिन बिगड़ता है

लोग बहकते हैं, इन्कलाब और जिहाद के लिये आमादा होते हैं, गांकि यह उबार, ये उठान, इन्सान की जिन्दगी में अहमियत रखता है । लाज; बड़ा आदमी, बड़ा अफसर, सब बड़े कहे जाने वाले, जिनके हाथ में रुपया है, सत्ता है, जो सब कुछ करते हैं, इसलिये अपनी दौलत से हुक्मत को भी खरीद सकते हैं । उफ ! मैं क्या लिख गया ? यह तो एक छोटी-मोटी तकरीर हो कर गया । जैसे तकरीर करना मेरा धन्धा हो । और तुम कहा भी तो करती थीं कि तुम बात कम करते हो, लेक्चर ज्यादा देते हो । पर लाजो, ये जमाने की हकीकत है । तुम इसको शायद न मानो ! क्योंकि तुमने मेरी बात न मानने की कसम खा रखी है और खूबसूरत तथा अच्छे कहे जाने वाले सब ऐसा ही करते हैं । पर सचाई से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता । बेचारा बड़ा अफसर तो मुझे रुस का एजेन्ट मान बैठा और तभी दफ्तर से निकालने में उसने जल्दी की । खैर, भगवान् उसका भी भला करे । बस, आज इतना ही क्योंकि दिमाग परेशान हो गया है ।

+ + + +

लोगों की राय में पढ़-लिख जाने के बाद आदमी अमीर हो जाता है और मैं जो अच्छे-अच्छे कपड़े पहिनता हूँ, कमरा सजा के रखता हूँ, इस तरह का वहम अगर मुलाकातियों के दिल में पैदा कर देता है तो कोई ताज्जुब की बात नहीं । यह ठीक ही तो है कि यदि अच्छे कपड़े न पहिन्नू तो अच्छा मुहल्ला रहने को न मिले, अच्छे कहे जाने वाले लोग बात न करें । अच्छे लोगों की दुनिया में रहने के लिए अच्छे कपड़े उसी तरह अहमियत रखते हैं; जिस तरह कोई औरत के जिस्म पर गहने । बात यूँ है लाज, कि आज की दुनिया में सोना कसौटी पर कसा जाता है और इन्सान सोने पर, पैसों पर, कागजी नोटों

पर। आज की दुनिया में दोस्ती, मुहब्बत, शराफत और इन्सानियत सबका अकेला यही मापदण्ड है। पर मुझे लोगों से कोई गिला, शिकवा या शिकायत नहीं है। क्योंकि मैं मानता हूँ इन्सान मासूम होता है, और तुम जानती हो कि मुझे मासूमियत से प्यार है। मैंने हमेशा ही तुमसे कहा है कि इन्सान अपने आप ही बुरा नहीं है, उसको बुरा बनाने वाली दुनिया और दुनिया की चीजें हैं। क्योंकि हमारे सामाजिक कस्बे के पास—मेरी दिलकश दोस्त—एक बड़ी भारी गन्दी नाली बहती है, जिसमें इन सब बुराइयों के कीड़े पलते हैं। बीच-बीच में कई जगह 'गटर' हैं जिनकी बदबू, जिनकी गंदगी इन्सान की जिन्दगी में इस तरह घुल गई है जैसे वही जिन्दगी है। और बस, अब इतना ही।

उम्मीद है, स्वस्थ और सानन्द हो। यदि उचित समझो तो एक चिट्ठी लिख देना।

तुम्हारा ही सदैव,

+ + + +

— — —

